अंतिम साक्ष्य

यह मीना मौसी की कहानी है, जो पहले बूढ़े से ब्याही गई
और जब उसका जवान लड़का ही डोरे डालने लगा,
तो उसने अपनी पत्नी वापिस लौटा दिया.
फिर से ब्याही गई जगन के साथ
और जगन उसे कोठे पर बेच गया
उस बदनाम बस्ती से निकाला
उसे एक उदारमना संगीत मास्टर ने
और वह बन गई रेडियो सिंगर
अतत. एक भरे-पूरे परिवार के बाऊ जी से
ऐसे नेह-भरे सम्बन्ध बने कि पहले बाऊ जी की पत्नी मरीं
एक लड़का प्रेमिका को ले भागा
दूसरा विद्रो अलग हो गया
और फिर बाऊ जी भी स्वर्ग सिधार गए।
पूरी की पूरी कहानी बाऊ जी के घर में ही घटती है
वह घर जो निरन्तर टूटता चला जाता है
चंद्रकान्ता ने 'अंतिम साक्ष्य' में रिश्तों और प्रेम सम्बन्धों को
बड़े मार्मिक ढंग से उकेरा है।

चंद्रकान्ता

अंतिम साक्ष्य

हिन्द पॉकेट बुक्स

अंतिम साक्ष्य

रात के मायूस अंधेरे को प्रकाश की पहली मुलायम किरण ने छुआ। पड़ोस के किसी आंगन से मुर्गे ने सुबह का आगम सूंघकर बाग दी। सोई बस्ती में रोकर जागती मीना ने आं बंद कर लीं, जैसे नयी सुबह का सामना करने की उसकी सा शक्ति चुक गई हो।

छत वाले कमरे में खामोश रात की धड़कनों पर तवी पा ऊंघते सियारों और भौंकते कुत्तों की त्रासद चीखें गिनता, फिर भयावह स्वप्न से कांपता विकी बिस्तर छोड़कर बाहर आय दबे पांव। तूफान थम जाने के बाद का अस्त-व्यस्त माहौ मायूसी की चादर में लिपटा पड़ा था, बाहर से शांत, भीतर त्रस्त।

नीम धुंधलके में घर की छत पर दबे पांव चलते वह स्व को अजनबी-सा महसूस करने लगा। ढक्की के नीचे का ढलान पर बने उसके घर के एक ओर ऊंचे मकानों की छ दूसरी ओर किले की पुरानी दीवारें सिर ऊंचा किए तानाशा की तरह खड़ी थीं, हमेशा की तरह। अपने पस्त मकान खुली छत पर खड़ा विकी स्वयं को बेहद बौना महसूस क

गया।

बीच आंगन के एक कोने में बाऊ जी का पलंग खींचकर दीवार के साथ खड़ा कर दिया गया था। पूरी निवाड़ पानी पर घुमने के निशान हो गई थी। आंगन के बीचोंबीच [illegible] मोटे से [illegible] पर [illegible] गीली [illegible] उखड़ी [illegible] रहे थे। बाऊ जी के सामने से घर की दीवारों की चमक भी जैसे रातों-रात छूट गई थी।

दो-ढाई वर्षों में ही कितना कुछ बदल गया, घर के नक्शे से लेकर घर की आत्मा तक। जगह-जगह दीवारों का पलस्तर उधड़ गया है। आंगन में छोटे-बड़े गड्ढे पड़ गए हैं जिनमें रात भरके पानी से डबरे बन गए हैं। धुएं से काला पड़ा रसोई का जालीदार दरवाजा, दो शीशों से जुड़ा हवा के हल्के झोंकों से कराहने लगता है। टंकी की दीवार में आदमकद दरार, ड्योढ़ी में जगह-जगह सीमेंट उखड़ा हुआ, मलबे के छोटे-बड़े ढेर इधर-उधर पड़े हुए।

नयी सुबह के रंगों में घर का उजड़ापन उसे वीरानियत की हद तक टीस गया। लगा, अरसे से कोई ड्योढ़ी में बैठा नहीं है। किसी को किसी का इन्तजार नहीं। विकी की पसलियों के बीच बेचैनी की तीखी लहर कौंध गई। अब कौन किस की प्रतीक्षा करेगा? बीजी के साथ ही जैसे प्रतीक्षाओं का अंत हो गया था। वही तो थीं, जो मकान के साये लंबे होते ही ड्योढ़ी में पहुंच जाती थीं। ड्योढ़ी से लगी सीमेंट की बेंच पर हाथ की कोई कढ़ाई-बुनाई लेकर बैठ जाती। एक नजर हाथ के काम पर, चार नजरें ढक्की की टेढ़ी-मेढ़ी सर्पाकार सड़क पर! हल्की गहरी पगध्वनियों में विकी के संकेत पकड़ती बीजी के चिन्तित चेहरे पर आश्वस्ति की लहर दौड़ जाती, 'आ गया' स्वयं से कहतीं। वे हाथ की सलाइयां समेट चुस्त सधे कदमों से

घर के भीतर चली जाती। कुछ विशेष न करने को होते के बावजूद इधर-उधर मंडराती रहती, क्या मालूम कब बेटे को किसी चीज की जरूरत पड़ जाए ?

यह प्रतीक्षा विकी के लिए ही नहीं, सुरेश के लिए भी थी, बाऊ जी के लिए भी। यह बात अलग थी कि सुरेश के लिए उन्हें घंटों बैठना पड़ता था। बार-बार भीतर के कामों को रोककर गली निहारनी पड़ती। थकान व चिन्ता से चेहरा राख रंग हो जाता, मुंह पर तनाव की रेखाएं गहरा जातीं। बाऊ जी के लिए तो उनका पूरा जीवन एक लंबी प्रतीक्षा बन गया था।

लड़कों को खिला-पिलाकर वे देर तक सीमेंट की बेंच पर बैठा करतीं, गुमसुम। विकी कहता, "यह रोज रात-रात तक इधर घंटों बैठना क्या अच्छा लगता है ?"

बीजी अच्छे-बुरे पर तर्क न कर इतना ही कहतीं, "इधर ठंडी हवा चलती है न। पंखे के नीचे तो सिर दुखता है।"

बीजी ड्योढ़ी को अपने हाथ से झाड़-पोंछकर चमकाती रहतीं। उनकी सहेलियां भी झिझकते नंगे सीमेंट पर पालथी मारकर बैठना पसन्द करतीं। सिर्फ बाऊ जी को उनका वहां बैठना पसन्द न था। आखिर उनका एक नाम था मुहल्ले में, एक साख थी। ओहदेदार लोगों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना था। कभी किसी दोस्त को घर ले आए और पत्नी ड्योढ़ी में जमीन पर बैठी मिले, तो कैसी भद उड़े ? पर बीजी पति के तर्कों का कोई उत्तर न देती थीं, अपने मन की ही करतीं। उनको नम्रता की परिभाषा में दूसरों की सुनना और अपने मन की करना लिखा था। आखिरकार हारकर बाऊ जी ने ड्योढ़ी के पास, सीढ़ियों के साथ, सीमेंट की एक कुर्सीनुमा बेंच बनवा दी थी।

विकी ने बेंच की जगह मलबे के छोटे-से ढेर को देखा, तो मन में सब कुछ खत्म होने का अहसास भर गया। दो-ढाई

विकी ने असहाय भाव से मौसी को ताका, "क्या एक बार फिर डाक्टर को बुलाऊं ?"

"नहीं, अभी तुम जाओ। सफर से थके हो। जरूरत पड़ी तो बुला लूंगी।" वे हाथ पकड़कर उठाते हुए बोली थीं।

मौसी के स्पर्श से उस समय विकी को अचानक बीजी याद आ गई। आंखों में धुंध-सी छाने लगी। बेहद अकेलेपन में किसी का सान्त्वना-भरा स्पर्श कितनी शक्ति देता है ! विकी अभी इतना निःसंज्ञ तो नहीं हुआ कि उसे महसूस न कर पाता।

घंटे-भर में ही सब समाप्त हो गया था। ऐसे अवसरों पर औरतें जो रोना-धोना मचाती हैं, मीना मौसी ने वैसा कुछ भी न किया। लगभग आधे घंटे चुन्नी से मुंह ढके बाऊ जी को निःशब्द आंसुओं का अर्घ्य देती रहीं, जैसे उनकी आत्मा के लिए मूक प्रार्थना कर रही हों। विकी सूने घर में भयमिश्रित वेदना के अहसास से बच्चों की तरह सुबक उठा था।

मीना मौसी ने उठकर विकी को संभाला था। गले से आवाज खींचकर निकालने पर भी शब्द फुसफुसाहट से ऊपर उठ न पाए थे, "सब कुछ तो पहले ही खत्म हो गया था बेटा ! अब इस मिट्टी के लिए क्या रोना ?"

विकी को मालूम नहीं कि मौसी के कथन में कितनी सचाई, कितना दर्द, कितना दंश था। जो कुछ घटा था, उसके लिए विकी कहां तक उत्तरदायी था ? सोचने को बहुत कुछ [illegible] भीतर बैठकर अपनी अन्तरात्मा के साथ आलाप करते [illegible] निष्कर्ष निकाल सकता था। यद्यपि रात- [illegible] भी पर अपने संदर्भ में नहीं सोच सका। उसे [illegible] बी के जाने से वह अनाथ-अकेला हो गया है; पर [illegible] में ही उभर गई है।

दो

मीना मौसी पहली बार सुरेश की मगनी पर प्रतापसिंह के घर आई थीं। उसकी मकान मालकिन सहेली कैलाश जबरदस्ती कसम दिलाकर ले गई, "मेरी बहन के घर मगनी है मेरी सहेली न जाए तो मुझे अच्छा थोड़े ही लगेगा।"

मीना शादी-ब्याह, उत्सव-भीड़ो से दूर रहना ही पसद करती थी, पर कैलाश की जिद पर हार गई। विवश भाव से उसने अपनी अनिच्छा दिखाई, "तुम्हारी सहेली के बिना मगनी नहीं होगी क्या ?"

"बिलकुल नहीं।"

मीना हलके नीले रग का सादा सूट पहने हुए थी। कैलाश ने उसके ट्रक-बक्से उलट-पुलटकर अपनी पसन्द के कपं निकालकर दिए, जरी के चौड़े पाट वाली लाल बनारसी साड़ी "यह साड़ी पहन ले। जोगी वाला भेस लेकर वहां नहीं जा दूगी।"

साड़ी देखकर मीना के स्वर में थकान भर गई, "यह सा तो कितनी बार पहन चुकी हू कैलाश ! अब तो इसे जाने व दिन ही पहनाना।"

गाना समाप्त कर मीना घर जाने के लिए जिद करने लगी, तो कैलाश ने प्रताप को लाड-भरे स्वर में डांट पिलाई, "जीजा जी ! आप मर्द लोग बीच में बैठे रहेंगे, तो हम गाना-बाना बंद कर देंगे।"

प्रताप अपने अतिरिक्त उत्साह पर थोड़ा झेंपकर बाहर आ गए। कैलाश ने उनकी मोहासक्त दृष्टि को हिकारत की नजर से देखा था।

बाद में कैलाश की फरमाइश पर मीना ने कई गीत सुनाए, आधी रात तक। रात के अंधेरे को चीरते दर्द-भरे सुरीले स्वर दिलों में हूक उठाते रहे। प्रताप सो न सके, उस हूक को अपने सीने के भीतर महसूसते रहे।

मैं नहीं हूं नगमए जांफिजा, मुझे सुन के कोई करेगा क्या,
मैं बड़े बरोग की हूं सदा, किसी दिल जले की पुकार हूं।

बीजी के आदेश पर विकी-सुरेश मीना को 'मीना मौसी' कहने लगे। एक-दो बार का औपचारिक मिलन अच्छी-खासी मित्रता में कब और कैसे बदल गया, न मीना जान सकी और न बीजी ही। बीजी को मीना का गरिमापूर्ण गांभीर्य पसन्द आया। प्रताप ने उसकी खामोश आंखों में सागर की हरहराहट महसूस की। उस पर मीना की तिलिस्म-भरी आवाज से वे बिधकर रह गए। प्रताप ने पहली मुलाकात में ही इस उदास आंखों वाली लड़कीनुमा औरत से मैत्री के अदृश्य अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिए। हमेशा अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता से काम लेने वाले प्रताप, उस समय न सोच सके कि अपनी छोटी-सी गृहस्थी, उन्हें इस प्रकार के लुके-छिपे सम्बन्ध की इजाजत नहीं देगी। अपने कर्तव्यों के प्रति सजग, काम-से-काम रखने वाली उनकी पत्नी गैरजरूरी रिश्ते-नातों के प्रति कुछ ज्यादा ही अनुदार थी, परन्तु उस पर भी मीना का जादू चल गया

कैलाश को स्वर की पहचान हो गई। अनजाने में ही मीना की रागनी पर ऐतराज़ पर अफसोस भी हुआ। ताजमहल के गुंबद से बोलो... गाने को तुम्हारा मन न करता हो तो...।"

कैलाश का उत्साह से दमकता चेहरा सहसा उतरता देख मीना बरबस मुसकराई 'वाह ! मन क्यों नहीं कर रहा? पर उन तुम्हारी दीदी से मिलने को तो मैं पागल हुई जा रही हूं।'

घर वालों से मीना की पहचान कैलाश ने अपने ही ढंग से करवाई। घर-द्वार परिवार आदि का परिचय दिए बिना केवल मीना को ही प्रस्तुत किया, 'दीदी ! मीना रेडियो कलाकार है। इसकी रस-भरी आवाज़ सुनकर आम के पेड़ पर गाती कोयल चुप हो जाती है।"

और कुछ ही क्षणों में रेडियो आर्टिस्ट के नाते मुकरने पर भी पूरा घर-कुटुम्बा उन्हें घेरकर मनुहार करने लग गया था।

"शादी वाला गाना, मीना ! गजल-वजल नहीं चलेगी।" कैलाश मीना पर अधिकार जताती अरसरान दिखा रही थी।

"क्यों, गजल को क्या हुआ ?" संगीत के रसिया प्रताप जाने कब औरतों के बीच आकर जम गए थे।

चारों ओर उत्सुक आंखों की भीड़ से घिरी मीना घबरा गई थी। कपोलों पर जैसे किसी ने गहरे रूज का टच दे दिया हो। अपने विषय में सचेतता ने आवाज़ में हल्की-सी लरज भर दी। कैलाश की लाख हिदायत के बावजूद गजल ही उसके मुंह से निकल पड़ी थी।

शुभ अवसर पर चहकते घर में कुछ देर सुई फेंक खामोशी छा गई थी। केवल मीना का दर्दीला स्वर पूरे वातावरण पर छाया रहा, संगीत की ऊंची-ऊंची लहरियों पर बल खाता। मंत्र-विद्ध से प्रताप मीना की ओर मोहाविष्ट देखते रह गए थे।

गाना समाप्त कर मीना घर जाने के लिए जिद करने लगी, तो कैलाश ने प्रताप को लाड-भरे स्वर में डांट पिलाई, "जीजा जी ! आप मर्द लोग बीच में बैठे रहेंगे, तो हम गाना-वाना बंद कर देंगे।"

प्रताप अपने अतिरिक्त उत्साह पर थोड़ा झेंपकर बाहर आ गए। कैलाश ने उनकी मोहाब्बत दृष्टि को हिकारत की नजर से देखा था।

बाद में कैलाश की फरमाइश पर मीना ने कई गीत सुनाए, आधी रात तक। रात के अंधेरे को चीरते दर्द-भरे सुरीले स्वर दिलों में हूक उठाते रहे। प्रताप सो न सके, उस हूक को अपने सीने के भीतर महसूसते रहे।

मैं नहीं हूं नगमए जांफिजां, मुझे सुन के कोई करेगा क्या,
मैं बड़े बरोग की हूं सदा, किसी दिल जले की पुकार हूं।

बीजी के आदेश पर विकी-सुरेश मीना को 'मीना मौसी' कहने लगे। एक-दो बार का औपचारिक मिलन अच्छी-खासी मित्रता में कब और कैसे बदल गया, न मीना जान सकी और न बीजी ही। बीजी को मीना का गरिमापूर्ण गांभीर्य पसन्द आया। प्रताप ने उसकी खामोश आंखों में सागर की हरहराहट महसूस की। उस पर मीना की तिलिस्म-भरी आवाज से वे बिंधकर रह गए। प्रताप ने पहली मुलाकात में ही इस उदास आंखों वाली लड़कीनुमा औरत से मैत्री के अदृश्य अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिए। हमेशा अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता से काम लेने वाले प्रताप, उस समय न सोच सके कि अपनी छोटी-सी गृहस्थी, उन्हें इस प्रकार के लुके-छिपे सम्बन्ध की इजाजत नहीं देगी। अपने कर्तव्यों के प्रति सजग, काम-से-काम रखने वाली उनकी पत्नी गैरजरूरी रिश्ते-नातों के प्रति कुछ ज्यादा ही अनुदार थी, परन्तु उस पर भी मीना का जादू चल गया

[illegible] को स्वर की पहचान सूझ गई। अनजाने में ही दीदी की [illegible] सुनने पर अनायास भी हुआ। [illegible] के नहीं तो [illegible] करने तो मुस्कराना मन में करना ही होगा।"

कैलाश का इशारा तो समझ गया, चेहरा सहसा उतरा देख मीना बरबस मुस्कराई। वाह! अब क्यों नहीं कर रहा ? [illegible] गुनगुनाती दीदी से मिलने को भी मैं लालच हुई जा रही है।

पर भाभी से मीना की पहचान कैलाश ने आते ही करवाई। घर-द्वार परिवार आदि का परिचय दिए बिना केवल मीना को ही प्रस्तुत किया, "दीदी! मीना रेडियो कलाकार है। इसकी रस-भरी आवाज सुनकर आम के पेड़ पर काली कोयल चुप हो जाती है।"

और कुछ ही क्षणों में रेडियो आर्टिस्ट के नाम जुड़ने पर भी पूरा घर-कुनबा उन्हें घेरकर मनुहार करने लग गया था।

"शादी वाला गाना मीना! गज़ल-वज़ल नहीं चलेगी।" कैलाश मीना पर अधिकार जताती आश्वासन दिया रही थी।

"क्यों, गज़ल को क्या हुआ ?" संगीत के रसिया प्रताप जाने कब औरतों के बीच आकर जम गए थे।

चारों ओर उत्सुक आंखों की भीड़ से घिरी मीना घबरा गई थी। कपोलों पर जैसे किसी ने गहरे रंग का टच दे दिया हो। अपने विषय में सचेतता ने आवाज में हल्की-सी लरज भर दी। कैलाश की लाख हिदायत के बावजूद गजल ही उसके मुंह से निकल पड़ी थी।

शुभ अवसर पर चहकते घर में कुछ देर सुई फेंक खामोशी छा गई थी। केवल मीना का दर्दीला स्वर पूरे वातावरण पर छाया रहा, संगीत की ऊंची-ऊंची लहरियों पर बल खाता। विद्ध से प्रताप मीना की ओर मोहाविष्ट देखते रह

से बात करने चल पड़ा।

घर की बागडोर चाची के हाथ में थी। चाचा ऐसे मामलों में अपनी पगड़ी थामे प्रायः मूक दर्शक बने रहते। कोई बात बर्दाश्त से बाहर हो जाती तो घर से बाहर निकल पड़ते।

चाची ने लाला की खातिरदारी की। मुंह का रंग उड़ा देखकर मिजाज पूछा। लाला भूमिका बांधे बिना ही काम की बात पर आ गए, "मीनू को लौटा रहा हूं। उसका रिश्ता कहीं और कर दो। पोती की उम्र की लड़की को घर में रखूंगा।"

चाची ने कंजी आंखों पर जोर देकर लाला का मुआयना किया, "लाला, होश में तो बात कर रहे हो न?"

"पहले नहीं था, अब बिलकुल होश-हवास में हूं। तुमने लड़की की उम्र बीसेक साल बताई थी। वह तो बारह साल से ऊपर नहीं लगती।"

चाची की खा जाने वाली नजरों को नजरअंदाज कर लाला ने बात का रुख पलट दिया, "मैं शादी का खर्चा देने को भी तैयार हूं...।"

चाची ने भीतर-ही-भीतर लाला की तिजोरियों के तोल का अंदाजा लगाया। मुंह पर क्रोध और दुःख की मुद्रा चिपकाकर बोली, "लाला! दोष तुम चाहे दूसरों को दो; पर यह बात पहले ही सोचनी थी। हमने बेटी को ब्याहा है, बेचा नहीं है। हिंदू लड़कियां क्या बार-बार मंडप चढ़ती हैं? ऐसा अपराध मुझसे न कराओ कि दूसरी दुनिया में जवाबदेही करनी पड़े।"

लाला ने दुनिया देखी थी। चाची को सहसा परलोक की चिंता सवार होते देख समझ गया कि बुढ़िया सौदा कर रही

सोऊंगी, रात को तुम्हारे पांव दाबूंगी···।"

चाची के चेहरे पर हास्यास्पद कोमलता झलकी, "छूट पगली ! अब अपने घर खाना बनाना। कोई लड़की कभी हमेशा अपने मां-बाप के घर रही है ? तेरी किस्मत अच्छी थी कि जगन ब्याह के लिए राजी हो गया। नहीं तो एक बार जो मंडप चढ़ी, उसका हाथ कौन थामता है ?"

मीनू ने जगन को देखा था। यमदूत के-से भयावह चेहरे पर गज-गज-भर नुकीली मूछें। देखते ही वह पीपल के पत्ते-सी कांप जाती, थर-थर। वह अपने लम्बे-चौड़े आदमनुमी जिस्म पर रोज सुबह तेल मालिश करके घंटों दंड पेलता था।

हर जवान लड़की से छेड़खानी करता। काम के नाम पर कभी-कभी लोहे के जंग लगे टिन में छोले उबालता। सूरज ढलते तमले में आलू-छोले सजाकर, ठेला लेकर चौक पर निकल जाता।

मीनू का हाथ-पैर ओढ़ना बेकार हुआ। चाचा ने सिर पर हाथ फिराकर समझाया, "बेटी ! लड़कियों का अपना ही घर भला ! कब कैसा वक्त आए, किसे मालूम ? हम लोग भी क्या हमेशा बने रहेंगे ?"

चाचा शायद यह भी कहना चाहते थे कि यहां रहकर ही कौन-सा सुख भोग रही है ? पर चाची से भय खा गए। चाचा की बात में मोह का अंश था, जो मीनू को भीतर तक छू गया। वह उनके गले लगकर रोई और मंडप में ऐसे बैठ गई, जैसे खुद ही अपनी लाश को कंधा देने को तैयार हो गई हो।

जगन ने कुछ दिन लाड़ दिया। डरी-सहमी मीनू दो-एक महीनों में उस लाड-भरी दानवी नोच-खसोट को सहने की आदी हो गई। उसकी समझ में यही पति-पत्नी का रिश्ता था। जगन मीनू के आसपास मंडराता रहता। घंटों उसके निष्कलुष चेहरे

[illegible] भर और गली को निहारता रहता। इतने में शाम [illegible] उस ओर दौड़कर पास बुलाता। मीनू मुंह में दबाती, रहती, दांत भींचकर मटकती रहती। उसका बचपन जो [illegible] था। जगन उसका अपना आदमी था, बचपन से उसके मन-प्राण का सम्पूर्ण रूप से हकदार था।

कुछ दिन बाद सुन गया कि काम-धंधे के बिना आदमी ज्यादा देर नहीं टिकता। मीनू ने राजन के घरों [illegible] को बुखार उतर गया, 'क्या ऐसी जिन्दगी है? चार रोटियों से छुटकारा नहीं। बस, उम्र-भर गधे की तरह जुटे रहो।'

मीनू ने बचपन से कड़वी सच्चाइयां झेली थीं। आराम, चैन, छुटकारा ये सब शब्द उसकी समझ से परे थे। उसकी चाची भी तो बार-बार यही बात दुहराती थी, "काम नहीं करेगी तो खाएगी क्या?"

"तू क्या काम करेगी?" जगन उसकी बड़ी-बड़ी पनीली आंखों को अपनी चौंधियाई आंखों से भेदता हुआ बोला, "बस एकाध साल और बीतने दे, फिर तो तुझ पर सोना बरसाने वालों की भीड़ लग जाएगी।"

मीनू उन्मुक्त-अनुन्मुक्त आंखों में ढेरों प्रश्न लिए देखती रही, अबोध! जगन शाम को ठेला लेकर जाने लगा। मीनू खुश हो गई। चलो जिम्मेदारी का अहसास तो हो गया। दो जून रोटी की जुगत तो हो गई। उसकी अपेक्षाओं का आकाश कितना बड़ा था! छोटे-से दाने-सा ही तो। वह मन लगाकर जगन के काम में हाथ बटाने लगी। चना साफ करके धो-धाकर रख देती। चना उबालने वाले टिन मांज-मांजकर चमकाती रहती। न जाने कितने मालों के जंग लगे टिन उसके हाथ लगते ही निखरने लगे। मीनू काम के वक्त जगन के पास खड़ी रहती। वह चनों में मसाला मिलाता रोजगार के दूसरे साधनों पर सोचता रहता।

कितने दिन चना उबालकर बेचता रहेगा और दाल-रोटी पर गुजर करता रहेगा ?

अपने झोपड़ीनुमा घर में तब हाथ बांधे खड़ी सुकुमार आंखों वाली, गऊ-सी पत्नी को देखकर उसका हौसला बढ़ने लगता। नहीं, वह उम्र-भर दरिद्र नहीं बना रहेगा। उसके पास रूप की राशि है। इसे खंडहर में छिपाकर वह दूर के तारे क्यों निहार रहा है ? उसके भीतर का राक्षस बार-बार सिर उठाता।

वर्ष-भर बीतते ही जगन ने अपनी योजनाओं को कार्यरूप देना चाहा।

उस दिन वह प्रतिदिन की अपेक्षा जल्दी उठकर नहा-धो लिया। खटर-पटर से मीनू की आंख खुली तो आसमान पर सुरमई रंग बिखरा हुआ पाया। हवा में सुबह की ओस भीगी तरलता थी। पीपल के पेड़ पर नन्ही चिड़ियों का झुंड चहकने लगा था। गली में मुंह अंधेरे मंदिर जाने वाले बूढ़े भक्तों व साइकिल पर भागते दूध वालों की आवाजों के सिवा और कोई चहल-पहल न थी। कहां तो जगन आठ बजने तक खर्राटे भरता रहता, कहां इतनी अलस सुबह नहा-धो भी चुका ?

मीनू हड़बड़ाकर उठी, "सब खैर तो है ?"

जगन मुसकराकर बोला, "आज मदनसिंह के घर जाना है। मेरा पुराना यार है। कल ही बाजार में मिला। बम्बे में फिल्म कम्पनी मे काम करता है। चलो, तुम भी तैयार हो जाओ।"

"मैं ? मैं क्या करूंगी जाकर ? मैं तो उसे जानती भी नहीं।"

"कैसे जानोगी ? वह इधर थोड़े रहता है ? साल-भर बाद आया है। आज कई दोस्तों को पार्टी दी है।"

मीनू ने शायद पहली बार ही बम्बई वाले मदनसिंह या

किसी और लोग का नाम सुना; पर उसने प्रश्न करना कब ही कहां था ?

राजा-संवारकर वह उसे मदनसिंह के घर ले गया, वहीं जरीवाली नागसाड़ी पहनाकर। मित्र कहकर मदनसिंह से परिचय करवाया, जिसके घर में उस वक्त उन दोनों के सिवा और कोई प्राणी नजर न आ रहा था। मीनू इस पार्टी का अर्थ न समझ सकी। उत्सुक आंखों से पति को देखा। इशारे से पूछ और लोग कहां हैं ? पर जगन को उत्तर देने की फुर्सत कहां थी ? वह मदनसिंह के साथ व्यस्त हो गया था।

काफी देर वह खिड़की के बाहर उन्मुक्त आकाश में पक्षियों को देखती रही। बिजली के तारों पर कबूतरों के जोड़े गुटरगूं कर रहे थे।

मदनसिंह ने घड़ी देखी और कुर्सी से उठ खड़ा हु "लगता है, मीलू को कुछ काम पड़ा है, क्या पता लौटने स्कूटर मिला या नहीं। दूर भी काफी गई है। भाभी को ए राज न हो तो हम ही उस तरफ चलें !"

उसके कथनानुसार मीलू अपनी सहेली को लेने गई थी घंटे-भर में लौट आने को कह गई थी, पर दो घंटों से ऊपर हो गए। मदनसिंह के चेहरे पर परेशानी झलक आई थी।

'भाभी' को भला इसमें क्या एतराज हो सकता था ? तीनों टैक्सी में बैठ गए। जगन मीनू के पास बैठा उसे समझाता रहा, "बड़े लोगों के घर जा रहे हैं हम। जरा ढंग से पेश आना। जो कहें सुनना, ज्यादा ना-नुकर न करना।"

मीनू तब भी लम्बी-घनी बरौनियां उठाए पति को देखती रही और बात का अर्थ समझने की कोशिश करती रही।

अर्थ तब समझ में आया, जब मदनसिंह व जगन उसे एक सजे-धजे कमरे में "अभी आते हैं," कहकर छोड़ गए और

दुबारा मुड़कर न आए। उस जालीदार पर्दों वाले कमरे में लटकते झाड़-फानूसों को वह विस्मित-सी देखती रही। ऐसा शानदार कमरा तो उसने अपनी जिंदगी में कभी नहीं देखा था।

दुलहन से सजे हुए कमरे में रंगे चेहरे वाली एक अधेड़ महिला ने उसका स्वागत किया। परीक्षक की-सी दृष्टि से देख उसके सिर पर हाथ फेरा। बाल देखे, शरीर के हर कटाव को तीखी नजरों से परखा। कहीं कुछ थोपा-पोता तो नहीं है? मुलम्मे के बाजार में खरा सोना पाकर उसकी लोलुप आंखों में एक वहशी चमक कौंध उठी। मीनू डरी-सहमी उस भद्दी औरत के तौर-तरीके देखती रही और दांत भींचकर सहती रही। ना-नुकुर भी न कर सकी। जगन की बात याद आई, "बड़े लोग हैं⋯।"

क्या बड़े लोग आदमियों को भी मेज-कुर्सियों की तरह छूकर देखते हैं, जैसे वे भी कोई मोल भाव करने की चीज हों?

जल्दी ही वह ऊब गई। उसने रंगे चेहरे वाली प्रौढ़ा से मदनसिंह के बारे में पूछा।

औरत ने सिर हिलाया, "आएगा, आएगा। तुम आराम से बैठो। इसे अपना ही घर समझो। यहां बहुत सखी-सहेलियां मिल जाएंगी। मन लगा रहेगा।"

तब तक कमरे की कांचवाली खिड़की से दो-चार उत्सुक चेहरे झांक गए थे। मीनू को उनके भद्दे हाव-भाव अखर गए। उसकी ओर इशारे कर आपस में कुहनियां मार-मारकर बतियाने का ढंग चुभ गया। वह भीतर-ही-भीतर घबराने भी लगी थी। बार-बार आंखें जगन की खोज में दरवाजे की ओर उठतीं, जो कहीं भी नजर न आ रहा था। आखिर गले में फंसी आवाज को खखारकर उसने वहीं आंटी से कहा, "मौसी! मैं घर जाना चाहती हूं।"

होंगे।

उस दिन मीनू को पहली बार अपने-आप से नफरत हो गई थी। अपनी देह के हर सुगढ़ उभार से वितृष्णा का ज्वार उठा था।

फिर अघट अपनी अबाध गति से घटता गया था। बाई मीनू के मासूम चेहरे पर शायद कुछ तरस खा गई या अपनी नई चीज का भाव बढ़ाने की खातिर उसने धंधे में लगाने से पहले उसे एक मास्टर जी के हवाले कर दिया, "यह मास्टर जी तुझे गाना-बजाना सिखाएगा।"

एक-दो चालू किस्म की गजलों में मास्टर जी मीनू की आवाज का तिलिस्म पहचान गए। जिस्मों की नुमाइश के बीच अपने अधनंगे शरीर में ढकी-छिपी-सी लगती इस लड़की को मास्टर जी ने गौर से देखा। उसकी अधमुंदी आँखों में करुणा का जाने कैसा आलोडन था, जिसने उस लोलुपता के बाजार में कला के सौदागर को झिंझोड़कर रख दिया। तभी एक दिन बाई के विश्वासपात्र मास्टर जी अपनी मालकिन की अनुपस्थिति में मीनू को लेकर शहर से बाहर चले गए। मीनू बिना मुड़कर देखे साथ चली आई। मुड़कर देखने को ऐसा कुछ भी तो न था, जो तीखे बिषदंतों से मुक्त हो।

मास्टर जी जैसे उम्र-भर के दुष्कर्मों का प्रायश्चित करना चाहते थे। वर्ष-भर में जितना कुछ सिखाया जा सकता था, उन्होंने मीनू को सिखाया। वह भी दिन-रात मन लगाकर रियाज करती, उनके श्रम को सार्थक करती रही। संगीत की धुनों में वह अपने समस्त अतीत और वर्तमान को भूलकर अलौकिक आनन्द से भर उठती।

मास्टर जी ने ही उसे जम्मू रेडियो स्टेशन से नियमित अनुबन्ध दिलवाए। छोटी-बड़ी परीक्षाओं में बराबर साथ रहे।

मीनू को लगा अचानक कोई देवदूत दिख पड़ा था, जिसने अपनी भावना पर अधिकार तो क्या, अनुरोध की नीति भी न अपनाई। मीनू उस प्रौढ़ पुरुष के व्यक्तित्व के नीचे दबने लगी जिसने उसमें जीने की लौ जगा दी। गर्दन उठाकर चलना सिखाया, पर भूलों के बोझ से उऋण होने का मौका न दिया।

आकाशवाणी में नौकरी मिलने के दूसरे दिन की संध्या मीनू कभी न भुला पाई। मीनू के रियाज को ध्यान से सुनकर मास्टर जी ने स्वयं को मुक्त कर दिया था। मीनू को पास बैठाकर जैसे अपने-आप से उन्होंने कहा था, "मीनू! अब मुझे जाना होगा।"

आसमान में काले बादलों का घमासान उमड़ आया था। गर्जन के साथ बिजली की चौंध और तूफानी वर्षा के सभी आसार नजर आ रहे थे। मीनू ने घबराकर आँखें और कान बंद कर लिए। कड़कती बिजली और बादलों के गर्जन से उसे हमेशा डर लगता रहा है। बचपन में ही वह बादलों की गर्जन के बीच कड़कती बिजली को देखकर, घुटनों में मुँह छिपाकर आँखें और कान बंद कर लेती। किसी अव्यक्त भय से थर-थर काँपा करती। मास्टर जी इस डर से परिचित थे, मुसकराकर पूछा, "अभी भी गर्जन से डर लगता है?"

मीनू ने सिर उठाया। कहना चाहा, "अब बिजलियों और गर्जनों की मैं आदी हो गई हूँ; पर आपने शांत-संयत भाव से जो सूचना दी है, वह मेरे अंतर में हजारों गर्जनें बनकर घुमड़ने लगी है और मेरा रेशा-रेशा दमघोंट भय से दहलने लगा है।"

मगर उसके होंठ काँपकर रह गए। भीतर सिर उठाते वहमों को भुलाने के लिए वह खिड़की के पास खड़ी हो गई। बाहर पानी धार बनकर बरसने लगा था और बौछारें कमरे

के अन्दर घुसकर उसे भिगोने लगी थी। पानी की उन चुभती शहतीरों से बेखबर, वह बाहर के अंधेरे को भावहीन आंखों से देख रही थी। कितनी देर संज्ञाहीन बैठी रही, मालूम न पड़ा। समय जैसे अठोर हो गया था। तिरछे बरछों-सी चुभती वर्षा से सारी कमीज भीग गई थी। शरीर में ठंड से पैदा हुई सिहरनों के बीच भी वह खिड़की का पल्ला थामे निर्विकार खड़ी रही, भीतर के तूफानों में धक्के खाती हुई। तभी कंधों पर एक उष्ण स्पर्श ने भीतर जमे शिलाखंड को आंच दी। मीनू बिना मुड़कर देखे, उन परिचित हाथों को भींचकर बहने लगी। असहायता की धुंध से सराबोर माहौल में मीनू उम्मीद की किसी हलकी-सी रेख के लिए उन्मत्त हो उठी। -

मास्टर जी कुछ चौंके होंगे। मीनू को उन्होंने हमेशा अलग-थलग रहने वाली, ठंडी और अनुभूतियों से रिक्त लड़की के रूप में जाना था। उस दुबले-पतले जिस्म के भीतर धुंधुआते दावानल की लपटें देखकर वे अव्यवस्थित-से हो उठे। मीनू बांहों से घेरकर मास्टर जी को भिगोती रही। कुछ देर चट्टान की तरह सख्त बने रहकर उन्होंने मीनू को तख्तपोश पर बैठाया, उलझे-बिखरे बाल सहलाए। बाढ़-सी बहती आंखों को कोमलता से पोंछते रहे और बार-बार कुछ कहना चाहकर भी उपयुक्त शब्द न जुटा सके। मीनू सिसकती हुई नन्हों बच्चों-सी गोद में दुबकी रही, कंजूस के धन की तरह उनके दोनों हाथों को कसकर पकड़े हुए।

मास्टर जी कुछ देर मीनू के अधीन, प्रबल आवेग से जूझते रहे, फिर थिर होकर मनुहार-भरे स्वर में पूछा, "मीनू, तुम तो रोए जा रही हो। यह भी नहीं पूछा, क्यों जा रहा हूं?"

मीनू कातर आंखें उठाकर देखती रही। क्या उत्तर देती? कारण पूछना और तर्क-भरे उत्तर सुनना, इनका मीनू के लिए

क्या महत्त्व था ?

उसके स्वर में मास्टर जी जैसे समाई गहरे-से बोले, "तुम्हें शायद [illegible] कि इतना सरल नहीं, जितना तुम समझती हो। पर इसके बावजूद मुझे जाना होगा। तुम्हें नहीं मालूम, [illegible] भी [illegible] है, जो [illegible] है। उन्होंने भी मुझे [illegible] है मीनू ! इन्हीं एक कला को [illegible] लोगों को [illegible] रखने की [illegible] है।"

"पर क्यों ?" सहमी-सिमटी मीनू के भीतर संशय ने सिर उठाया।

"मेरे कला में कोई खोट रहा होगा।" मास्टर जी का स्वर भारी हो आया, "अपनी तो मैं इतनी अनिवार्यताओं को भी जुटाने में असमर्थ रहा। तुम नहीं जानती, मशीन की डिग्री लेकर मैं महीनों दर-दर भटकता रहा। काम की तलाश में तन-मन से टूटा। तभी बाई के यहाँ कला का सौदा करने गया। सौदा न करता तो पत्नी और बच्चों को पालता कैसे ? मालूम है, बाई ने क्या कहा ? यह बोली थी, 'शास्त्रीय-उस्ताद संगीत तो बूढ़ों के लिए है मास्टर। यहाँ कुछ चटपटा सिखाओ बच्चियों को, हल्का-फुल्का पर मसालेदार, जो सुननेवालों को बाँधकर रख दे।'

"मैं समझौते पर तैयार हो गया। बाई के पास धन का अभाव न था और उस वक्त मेरे परिवार के अस्तित्व का प्रश्न मुझे सता रहा था ...।"

मीनू सुनती रही, खामोश। और धीरे-धीरे बाँहों के बंधन ढीले कर दिए। उसने तो छोटी उम्र से ही दुःख का भरपूर स्वाद जाना था। फिर उसके दुःख में अचानक ही कई और लोगों का दुःख-दर्द जुड़ गया था, निरीह, असहाय, नियति के पंजों में जकड़े हुए प्राणियों का दुःख-दर्द। मीनू ने भीतर उठ-

लते आमुओं का गला घोट दिया, 'नहीं, मैं मास्टर जी को कैद नही करूंगी।'

फिर भी मर्म मे कोई कांटा गड गया। चाची के शब्द याद आए बिना न रहे, "फूटा भाग लेकर आई है…।"

चाची की स्मृतियों में छुरियों की काट थी, कदम-कदम पर जहर-बुझे बाणों की पीडा का अतिरेक था, फिर भी कुछ सच था, जो हाथ कंगन की तरह मीनू के सामने स्पष्ट होता जा रहा था कि जिंदगी के लम्बे-चौडे बेडे मे वह अकेली खडी है, अकेली ही चलना है, बढना भी और डूबना भी। मास्टर जी ने उसे बढना सिखाया, यह क्या थोडा एहसान था मीनू के लिए ?

मास्टर जी ने ही कैलाश के घर का कमरा सस्ते किराये पर ठीक कर दिया और विदा ली। मीनू चाची के पास न गई। इस बीच चाचा गुजर चुके थे। जगन का भी कहीं अता-पता न था। वह शहर छोडकर चला गया था। शायद मदन दलाल के साथ धंधे मे शरीक हो गया हो। मीनू परिचित शहर में अज-नबी बनकर लौट आई। एक अलग-थलग जिंदगी जीने के लिए, अपने अतीत से ही नहीं, आसपास के परिवेश से भी कटी हुई, नितांत एकाकी जिंदगी।

दिन मे रेडियो स्टेशन, सुबह-शाम अपने कमरे मे बंद। बहुत हुआ, तो कैलाश ही कभी अवकाश के क्षणो मे आकर दो दो-चार बातें कर जाती, पर क्या मीनू अलग-थलग रह सकी ?

कैलाश के माध्यम से वह प्रतापसिंह से जुड गई और उसके बाद तो जुडने और जुडकर टूटने मे उसके साथ और लोग भी शामिल हो गए। अंत मे एक बार फिर अकेले होने के लिए।

तीन

ऐसा नहीं है कि मीना ने जुड़ाव की रेशमी कोमलता का स्पर्श कभी भी महसूस न किया हो। यों यह सच है कि कम उम्र में ही उसने संबंधों के वीभत्स रूप को देखा-भोगा था; लेकिन आदमी के सीने में जो दिल नाम की चीज धड़कती रहती है, वह उसे संबंधों से सन्यास लेकर जीने के लिए तैयार नहीं कर पाती। नहीं, आसानी से तो नहीं। जब ऐसा होता है, तो आदमी बुद्ध बन जाता है। कामनारहित, वासनारहित एक महान आत्मा। तभी शायद सदियों में बोधिसत्व का अवतरण होता है। अक्सर जुड़ाव के बिना जिन्दगी नीरस ही नहीं, अर्थहीन होने लगती है और तमाम उम्र हम किसी-न-किसी अर्थ के लिए ही तो जीते हैं।

मीना ने कष्ट सहे थे, पर उसके भीतर जो संवेदना की झील लहरा रही थी, वह उसे कितनी देर अलग-थलग रहने देती? उसका पहला जुड़ाव तो, नये घर में आकर, कैलाश और रमेश के साथ हुआ। कैलाश को भी मीना के रूप में एक प्यारी सहेली मिल गई थी, जो आते ही उसके छोटे-छोटे सुख-दुखों की भागीदार बन गई।

देखा जाए तो कैलाश अपनी छोटी-सी गृहस्थी में खुश थी। रमेश भाई भी अपनी पत्नी के प्रति गैरजिम्मेदार न थे। हफ्ते के छः दिनों वे सुबह दफ्तर जाने की हड़बड़ी में होते और रात घिरते ही घर लौट पाते, फिर तो खाना खाकर मिट्ठू से एकाध छेड़-छाड़, एकाध पप्पी लेकर सोने चले जाते, बशर्ते मिट्ठू तब तक जाग रहा हो तो। अक्सर वह पापा के इंतज़ार में आधा मचलता-मचलता ही सो जाता, लेकिन रविवार को हफ्ते-भर की हड़बड़-दबड़ का कोई निशान बाकी न रखते। उस दिन उन्हें कोई अपरिचित देख लेता, तो समझता कि पत्नी और बच्चे के अलावा रमेश भाई का कोई संसार नहीं, किसी तरह की मसरूफियत नहीं।

उनकी दिनचर्या मीना को अच्छी लगती। सुबह प्राची में उजास फैलते ही वे बिस्तर छोड़ते। छोटा मिट्ठू तो उनसे पहले ही बिस्तर पर उठकर बैठ जाता। वे तीनों नदी पुल तक घूमने जाते, फिर लौटने पर इतमीनान से नाश्ता बनता। रमेश भाई कैलाश के साथ मिट्ठू को लेकर कभी फ्रेंच टोस्ट, कभी स्पेनिश कभी बेसन का मीठा, कभी कुछ ट्राई करते। वे लोग अक्सर छुट्टी के दिन मीना को भी नाश्ते के लिए बुलाते फिर इतमीनान से पूरे दिन का प्रोग्राम बनता, जिसमें कभी-कभी फिल्म देखना, कभी पिकनिक, कभी खरीदारी या मंदिरों की सैर करना और शाम का डिनर किसी सुन्दर-से रेस्तरां में लेना, वगैरह भी शामिल होता।

मीना को पहले-पहले रमेश भाई का तरीका समझ न आया। यह आदमी, जिसकी व्यस्तता के कारण हफ्ता-भर अपना बच्चा तक सूरत नहीं देखता, छुट्टी के दिन एकदम इतना खाली कैसे हो जाता है कि पूरा-का-पूरा अपने घर परिवार को समर्पित हो जाता है ?

थो हुजूर गश खाकर गिर न पड़ें और आप कह रही हैं, कोई नजाकत न थी।"

मीना चुन्नी का छोर मुह मे दांबे मुसकराए जा रही थी। रमेश के हाथों-आंखों की मुद्राए देख हसी आती थी।

"क्या बात कर रहें हैं ?" अपने को संयत करती वह रमेश से बोली।

"सच भई, पूछ लो इसीसे। औसत पत्नियों जैसी होती, तो सुबह उठते मेरे पैर न छुआ करती ? रात थका-मादा लौटता था, तो जरा पाव न दाबती मेरे ? हैं, जैसा सभी करती हैं ?"

"अहा, सभी करती हैं। पता नही, किस परनानी के जमाने मे रहते हैं जनाब ! पैर दाबेंगी पत्निया ? और कोई धन्धा नही है उन्हें ? बहुत पुरानी बात कह रहे हो।"

"अजी, नया-पुराना छोडो। कुछ दिन तो आदमी नये-नये प्यार में नया-पुराना भूल ही जाता है, लेकिन हमारी वाली तो बस, कमरे में पांव धरते ही बिस्तर पर लुढ़क जाती थीं, फिर मेरा मालिक ही जानता है, कैसे इन्हे होश में ले आता, कपड़े बदलवाता, मनुहारें करके सशरीर उठाता। यह करता, वह करता, वगैरह-वगैरह।"

रमेश भाई बड़े भोले अन्दाज मे अपना भाषण समाप्त करते; लेकिन कैलाश भी कम हाजिरजवाब न थी, "भई वगैरह-वगैरह करने के लिए तो तुम्हें मनुहारें करनी ही थीं। मुझपर कोई अहसान तो नही करते थे।"

मीना सचमुच बडा अटपटा महसूस करती। कैसा अद्भुत जोडा है यह ! निःसकोच, कुंठारहित, गैरजरूरी औपचारिकताएं नहीं, बल्कि कभी-कभी तो मीना को लगता कि रमेश पत्नी को अतिरिक्त लाड दिखाकर शायद अपनी वफादारी दिखाना चाहता है।

दिनों के किस्से क्या सुनाऊं ? आय-हाय ! बस, इन्हींसे पूछ लीजिए। मैं तो सुनाते ही मस्त हो जाता हूं।"

"कुछ याद भी हो तो बताओगे न ? जमाने-भर की उलटी-सीधी बातें तो याद रहेंगी, पर वे बातें चलो, छोड़ो, अब उनमें रखा भी क्या है ?" कैलाश लम्बी सांस भरती रूठने का अभिनय करती।

"हां-हां, वह सपनों की बातें, छिप-छिपकर मुलाकातें, वह आसमान के बादलों पर झूले डालना और दूर आकाश पर हंसों के जोड़े की तरह उड़ते हम-तुम ! हाय ! कहां गए वे दिन ! कहां फंस गए इस राशन-सब्जी के चक्कर में ! प्यार का यही अंजाम होगा, मालूम होता, तो ऐसी गलती कभी न करते।"

रमेश भाई कमीज के बटन खोल, बालों का एक छोटा-सा गुच्छा माथे पर छितराकर रोनी सूरत बनाकर गाने लगते :

टूट गए सब सपने मेरे, टूट गए।

कैलाश गर्म-गर्म पकौड़े और चाय सामने ले आती, "लो-लो, गर्मागर्म पकौड़ियां खाओ। सब टूटे सपने जुड़ जाएंगे।"

रमेश भाई गर्मागर्म पकौड़ियां देखकर एकदम आसमान से धरती पर उतर आते। कमीज के बटन बन्द कर तिपाई अपनी ओर खींच लेते, "हां, यह हुई न कोई बात ! धर्मपत्नी का-सा आचरण ! पति के भूखे पेट का ध्यान तो आया। सुबह से बोलते-बोलते पेट में चूहे दौड़ने लगे हैं।" रमेश पेट पर हाथ फिराते और कैलाश मीठा-सा झिड़क देती।

"बोलते-बोलते भी पेट में चूहे दौड़ने लगते हैं, यह तो आज नई बात सुनी।"

रमेश तब इतमीनान से पकौड़ियों में चटनी मिलाने लगते "भई, हमें जो लगा, सो आपको बता दिया।"

कर सजीव हो उठीं। उसका सिर घूमने लगा। कैलाश ने उसके भीतर दबी-सी आह फूटते देख ली और करीब आकर बांह थाम ली।

"क्या हुआ मीना ! तबीयत तो ठीक है न ?"

"ठीक हू-ठीक ही हू।" मीना अपने को समेटते हुए उठने लगी, "ओह! चक्कर-सा आ गया। रात ठीक से सो नहीं पाई थी।"

लेकिन अचानक चक्कर आने का कारण रात को ठीक से न सोना नहीं है। यह बात रमेश-कैलाश दोनों ने पकड़ ली। हालांकि उस वक्त वे मीना के दर्द-भरे अतीत के बारे में कुछ *न जानते थे, फिर भी इतना उन्होंने ताड़ लिया कि अचानक* कोई कसक मीना के सीने में उभर आई है।

उसकी मन.स्थिति ताडकर कैलाश उसे बाहु से घेरकर अपने कमरे में ले गई। थोड़ा आराम करने की सलाह दी। रमेश हक्का-बक्का रह गया। क्या हुआ अचानक ? उसने कोई जी दुःखाने वाली बात कह दी ? मीना अकेली लड़की है। माता-पिता ने दूर परदेश में यों भी अपनों के लिए मन उदास रहता है। क्या पता, क्या बात याद आ गई ?

तब तक कैलाश भी मीना को कहां जानती थी ?

प्यारी घनी बरौनियों और झील-सी गहरी आंखों वाली *सीधी-सादी-सी लड़की अपने सीने में कितने तूफान छिपाए बैठी* है, इसकी कल्पना भी वे दोनों कहां कर सकते थे ? मीना के मास्टर जी ने तो बस इतना ही कहा था, 'यह लड़की घर से दूर परदेश में नौकरी करने आई है। अच्छे घर की भली लड़की है। घरेलू हालात कुछ ठीक नहीं हैं, बस।' कैलाश में भी आम महिलाओं की तरह अतिरिक्त उत्सुकता नहीं थी। नहीं तो पन्द्रह-बीस दिन साथ रहती दो महिलाएं क्या एक-दूसरे के

इतिहास-पुराण जाने बिना चैन से रह पातीं ?

कैलाश ने बाद में मीना को गर्म काफी पिलाते हुए पूछा "तुमने मुझे बहन तो कहा है मीना ! पर अपने बारे में कुछ भी नहीं बताया। एक तरह से मुझे अंधेरे में ही रखना मुनासिब समझा। क्या बहन को अपने बारे में जानने का अधिकार नहीं है ?"

"जानने को क्या है कैलाश बहन !" मीना जैसे पिछली बातें एकदम भूलना चाहती हो, "ऐसा तो मेरे जीवन में कुछ भी नहीं, जिसे सुनकर तुम्हारा मन खुश हो जाए, लेकिन पूछो तो अच्छा। जन्म से ही अभागी रही हूं। मां की याद नहीं। बापू की थोड़ी-सी यादें हैं। पर चाची कहती थी, जन्मते ही मां को खा गई। तुम्हारी सुखी गृहस्थी देखकर तो डर लगता है बहन ! कहीं मेरी मनहूस छाया तुम पर न पड़े।"

"छि-छि: यह कैसी बातें करती हो मीना ! न कहना चाहो, तो मत कहो; लेकिन मैं तुम्हारी बातों से बिलकुल सहमत नहीं हूं, इतना जान लो।"

"सहमत हो जाओगी, जब सुनोगी तो।"

मीना ने तब बड़ी हिचकिचाहट महसूस करते भी कैलाश को अपनी आपबीती सुनाई। न चाहते हुए भी वह कैलाश की आत्मीयता के सामने खुल गई। उसे बिना मांगे एक राजदार बहन मिल गई थी, जो उसके जख्मों पर फाहे लगाने को आकुल थी।

कैलाश के साथ रमेश भी उसके साथ जुड़ गया। जैसे उनके छोटे-से परिवार में एक और आत्मीय सदस्य आ गया हो। कैलाश ने ही उसे मीना के विगत का परिचय दिया। मीना के स्वभाव में ही कोई अचीन्हा आकर्षण था, जिससे प्रभावित हुए बिना रहना नामुमकिन था। उसके व्यक्तित्व की

सौम्यता और उस पर आवाज का जादू ! जो भी उससे मिलता उसे सुनता, आत्मीयता का हाथ बढ़ा लेता। रमेश को इस लड़की में बड़ी संभावनाएं नजर आई। इसे आत्मदया का शिकार होते वह देख न पाया।

उसने मौका मिलते ही उसे मीठा-सा डांट दिया, "देखो, मीना ! अब मीना ही कहूंगा। जी-हुजूर ! कुछ भी नहीं, मेरी छोटी बहन के बराबर हो। सुनो, हम दोनों तुम्हें खुश देखना चाहते हैं। यों भी मुझे रोनी सूरतें पसन्द नहीं। हंसते चेहरे ही भाते हैं। यह तेरी बहन है न, बहन-भाभी कुछ भी समझो ! मैं इसकी खूबसूरती पर नहीं फिसला। इसकी 'दर्दिया दिखाने' की आदत अपने को भा गई, बस।"

रमेश ने मीना को समझाते हुए कहा, "मुझे कैलाश ने सब कुछ बता दिया है। तुम्हारे साथ ज्यादती हुई है। कल मैंने अजाने तुम्हारा दिल दुखाया, इसका मुझे अफसोस है; लेकिन एक बात कहना चाहूंगा। जो वक्त बीत गया, उसके लिए रोने से अच्छा है, जो वक्त आये है, उसे खुशहाल बनाने की कोशिश करना।"

"मैं तो खुश ही हूं भाई साहब !" मीना ने सहज आत्मीयता के साथ मन को उघाड़कर रख दिया। मन भी क्या चीज है ? जरा-सी आत्मीयता ने कहीं छू लिया कि नेह में बिंध जाता है।

"आप लोगों ने जो प्यार दिया है, उसने मुझमें जीने की इच्छा जगा दी है; लेकिन कभी-कभी" क्या करूं ? जो कुछ मेरे साथ हुआ, वह साये की तरह साथ-साथ चलता है।"

"ठीक है मीना ! हम बीते हुए को झुठला नहीं सकते। उसे अनहुआ भी नहीं कर सकते। लेकिन जो बात अपने हाथ में नहीं, उसके लिए आने वाले दिनों को मैला तो नहीं करना चाहिए और फिर जिन्दगी सभी के लिए महकते फूलों की घाटी

नहीं होती। हमीं को देखो, हमने भी अपने हिस्से की तकलीफें उठाई हैं।"

रमेश ने कैलाश के विगत के बारे में बताया। मीना के सामने कुछ भी न छिपाया, "इस कैलाश को देखो, तीन साल की भी नहीं थी, जब मां छोड़कर चली गई। बिना मां की लड़की को, जो भी तकलीफें घर-बाहर की सहनी पड़ती हैं, इसने भी सहीं, पर कभी किसी तरह की शिकायत इसके मुंह पर न आई। शिकायत क्या, कभी चेहरे पर शिकन तक नहीं आने देती। लोग समझते हैं कि हमने जिन्दगी में सुख के सिवा कुछ देखा ही नहीं। दैट इज ह्वाई आई एप्रिशियेट हर।"

रमेश भाई ने खुद भी परिवार में क्लेश और बदमजगी को सहा था। उसने मीना को समझाया।

"तकलीफ-भरी यादें किसीके लिए भी कष्टकारी होती हैं। रोना-धोना, अपमान-तिरस्कार यह तो घर-घर चलता है। यह तो जिन्दगी की सचाइयां हैं। इनसे आदमी भागकर किस गुफा में जाएंगे ?"

अपनी बात करते हुए उसने कहा, "हम दो जब एक-दूसरे से जुड़े, तो हमारे घरों में महाभारत मच गया। देखा जाए, तो बिलकुल अकारण, लेकिन हमारे माता-पिता के पास अपने कारण थे। मां ने मेरे लिए पैसे वाली कोई रूपमी चुनकर रखी थी और नालायक बेटे ने उनकी आशाओं पर एकदम पानी फेर दिया था। कैलाश के पिता तो अपने संस्कारों की जंजीरों से इतने जकड़े हुए थे कि ब्राह्मणों में भी उपजातियों में बेटी देना मंजूर नहीं था और मैं तो कायस्थ था। उनकी परम्परावादी मान्यताओं के महल को ढहाने के लिए हमारा रिश्ता बहुत बड़ा खतरा था। देखा जाए तो अब ये सब बातें बिलकुल बेकार लगती हैं, बकवास। कहां-से-कहां तक हमारी साइंस, टेक्नालोजी ने

प्रगति की; पर हमारा सामाजिक मोघ ?. वही ढाक के तीन पात ! जो भी हो, यह छोटे-छोटे बक्वास हमारे होठों की हँसी छीनकर हमें वक्त से पहले बूढ़ा बना देते हैं, यह बात मैं भी मानता हूं।"

मीना सुनती जाती थी। रमेश-कैलाश केविवाह का विरोध। रमेश का घरवालों से विद्रोह कर कैलाश को अपनाना। बड़ा फिल्मी-सा लग रहा या सब कुछ; लेकिन उसका अपना जीवन भी तो कम घटनाग्रस्त नहीं रहा था। अविश्वसनीय मोड़ों से होता हुआ उसे कैलाश के घर तक ले आया था।

"जिस दिन कैलाश से शादी की, छोटा-सा हवन किया था आर्य समाज में और इसे घर ले आया। दो-एक मित्रों के साथ। बस, और कोई नहीं। सुख भी हमें रास नहीं आता मीना ! जब तक उसके भागीदार हमारे साथ न हों, बल्कि हमारी खुशी सुख में तभी तब्दील होती है, जब उसे बांटने वाले हमारे अपने हमारे आसपास हों।

"कच्ची छावनी में एक छोटा-सा कमरा लिया था मैंने। इसे वहीं ले आया। न हार, न शृंगार, न बनारसी जोड़े, न बाजे-गाजे। एक खामोश मिलन था वह। अपनों की नाराजगी का बोझ लिए, वह मिलन भी बड़ा अजीब था। उस रात सुहाग-रात के सपनों में खोने के बदले हम घरेलू समस्याओं से जूझते रहे। देर तक अपने लोगों के बारे में सोचते रहे, जिनका आशीर्वाद भी हमें नसीब न हुआ था।"

मीना चुप थी और सोच रही थी। अपनों के रहते हुए भी आदमी इतना अकेला क्यों हो जाता है ? कैलाश कह रही थी, "यह भी हमारे समाज का रोग है मीना ! माता-पिता तमाम उम्र बच्चों की खुशियां चाहते हैं; पर ऐन वक्त परम्परागत विश्वास और रूढ़ नैतिकताएं, उन्हें जकड़ लेती हैं। वे खुद को

चालाकी से मुक्त नहीं कर पाते।"

मीना का इतिहास दूसरा था। वहां उनके घर में मूल्य जैसी कोई चीज थी ही नहीं। होती, तो शायद मीना खूंटे बंधी गाय थी, जिसके साथ बांधी जाती, बंध जाती और तमाम उम्र मुंह बन्द करके पड़ी रहती। गिले-शिकवे करना तो उसने सीखा ही नहीं था. लेकिन रमेश-कैलाश को अलग माहौल मिला था। उन्हें अपनी बात कहने का, कम-से-कम अधिकार तो था।

"अधिकार तो हरेक को होता है मीना; लेकिन हम लोग उसका ठीक उपयोग करना नहीं जानते। अधिकार का मतलब निजी स्वार्थ ही नहीं है। तुम कह सकती हो कि हम तो अपने लिए स्वार्थी रहे, पर हम अच्छी तरह जानते थे कि इस स्वार्थ में बंधकर ही हम अपने घर-परिवार के लिए उपयोगी हो सकते थे। अलग होकर हम बिखर जाते और शायद जिन्दगी बेमतलब हो जाती। कुछ लोग एक-दूसरे के लिए ही बने होते हैं। कभी-कभी हमारे बड़े लोग, इस चीज को पहचानने में गलती कर लेते हैं। उन्हें विश्वास दिलाने के लिए कभी लीक से हटना भी जरूरी हो जाता है। और सुनो, मीना! जिन्दगी लाश की तरह ढोई नहीं जाती। वह बड़ी कीमती चीज है। उसका सही इस्तेमाल होना चाहिए।"

कैलाश ने पति की लम्बी वक्तृता पर विराम लगा दिया, "ले भई, अभी तक बोर नहीं हुई तो और सुनो! अच्छा है, अब कान बन्द कर लो।"

"सो तो तुमने कर लिए हैं, देख रहा हूं।" रमेश नाराजगी से बोला, "कब से तो एक कप चाय के लिए कह रहा हूं।"

"सो तो आप सुबह से तीन बार पी चुके महाशय! अब नहा लें और खाना खाएं। बेचारी धर्मपत्नी जी सुबह से महाराजिन बनी रसोई में घुसी बैठी हैं।"

"ओ, तो क्या कोई खास चीज बनाई है ? चिकन फ्राई, फिश कटलेट, मटन कोफ्ता…?"

"तामसी महाराज ! आपके लिए हमने निहायत सात्त्विक भोजन पकाया है।" कैलाश पति को रोककर बोली।

"धत् तेरे की ! हम तो भई, बाहर ही खाएंगे आज। हमसे तो उड़द की दाल और अलां-फलां की भाजी नहीं खाई जाएगी।"

"अरे नहीं, उड़द की दाल नहीं, कढ़ी-चावल और बैंगन का भर्ता बनाया है, खूब सारे टमाटर डालकर। खाओगे तो उंगलियां चाटोगे।"

"भई, आज मूड हो गया चिकन फ्राई खाने का। बैंगन तो गले में फंस जाएगा। चलो तैयार हो जाओ, बाहर चलते हैं। आज मीना को कास्मो दिखा लाते हैं। चलो भई, मिट्ठू कहां गया ? मेरा तौलिया पकड़ा दो…।"

रमेश हड़बड़ाहट दिखाता व्यस्त हो गया और कैलाश कंधे उचकाती बैठ गई।

"देखा, मीना ! हमारे मूडी मियां को। कब क्या मूड में आए, कोई भरोसा नहीं। मुझे जबरदस्ती माता-पिता से लड़कर उनकी इच्छा के विपरीत ब्याह लाए। उन्हें धमकी दे आए कि अब कभी अपनी सूरत न दिखाऊंगा और मालूम है, दूसरे ही दिन, सुबह-सुबह लेकर, घर गए और मुझे माता-पिता के चरणों में डाल दिया।"

"सच ?" मीना को विश्वास नहीं आ रहा था।

"और नहीं तो तुमसे झूठ कहूंगी ? मेरी तो हालत खराब, कुछ पूछो मत, टांगें थरथरा रही थीं, गला खुश्क हो रहा था। क्या पता क्या कुछ सुनना पड़े…।"

"कुछ कहा उन्होंने ?"

तक सीमित नहीं रखा। उसे बीजी और प्रतापसिंह से मिलाया। बीजी कैलाश की मा-जायी न थी, बिरादरी-कुल वगैरह का भी फर्क था, लेकिन बचपन से ही वे एक-दूसरे से बहनापा जोड़ बैठी थीं।

रिश्ता तो प्यार का ही जोड़ना चाहा था कैलाश ने, जो जुड़ा भी; पर प्यार का स्वभाव, सागर का स्वभाव है—कभी शान्त, धीर, अडोल। कभी तूफानी, कांपती लहरों के संशय से भरा, तोड़-फोड़ में महानाश को निमन्त्रण देता। मीना को तो उस प्यार का भी स्वाद देखना था। शायद इसलिए उसे बीजी-बाऊ जी से जुड़ना था। जुड़ना भी और जुड़ाव की हजार तकलीफों, दु:खों, बेहूदगियों के बीच अलग होना भी और अलग होकर नितांत अकेलेपन का स्वाद पाना भी।

चार

उम्र-भर तमाम भ्रमों को शीशे से चिपकाए रखने के बावजूद अंतस अकेलेपन की नियति को हम झुठला नहीं सकते, यह यह बात विकी ने बीजी के संदर्भ में बड़ी शिद्दत से महसूस की है। इस ढहते घर में जो आवाजें विकी को पिछली रात से तंग करती रही हैं, उनमें बीजी की आवाज सबसे ऊंची है। घर के कोने-कोने से जुड़ी स्मृतियां इस आवाज के माध्यम से लंबे-लंबे हाथ फैलाकर उसे छू लेती हैं। कहीं सूखी हुई देह पर फाहे लगा लेती हैं, कहीं जख्मों के खुरंड खुरचने लगती हैं। विकी संवेदन-शून्य-सा उनकी पकड़ में कसता जा रहा है। दूर रहकर भी स्मृतियां कोंचती हैं; पर उस कोंच में उदासी के पारावार के बावजूद उतनी जीवंतता, उतना पैनापन नहीं होता, जो जानी-पहचानी जगहों व गंधों के बीच सालता है।

मीना मौसी तो बाद में आई थीं। उससे बहुत पहले जिन सधे हाथों ने नन्ही अंगुलियों से लेकर चौड़े होते कंधों तक सहारे दिए थे, उठते-बैठते, सोते-जागते उन हाथों की मोह-ममता-भरी महक आज दरारों वाली बनने-बिगड़ने वाली है ? विकी उनकी निःसारता जानकर भी उनपर रोक नहीं लगा

पाता। स्मृतियों पर अंकुश लगाना आज उसके बस में नहीं रहा है।

आंगन में टंकी के पास बने चौकोर चबूतरे को देखकर क्यों लगता है कि अभी कोई व्यस्त हाथ बालटी-भर धुले कपड़े इस चबूतरे पर उड़ेलकर दुबारा मल-मलकर धोने लगेंगे? साबुन घिसते, छप-छप छींटे उछालते, लाल-नीली चूड़ियों वाले पुष्ट हाथ। छोटा विकी टंकी के पास आकर नल खोलेगा, पानी की धार से खेलने के लिए और बीजी हल्की-सी धौल जमा फुर्ती से उसे बांहों में उठाकर ड्योढ़ी में बैठा आएगी। विकी पानी में खेलने की जिद करेगा, बीजी चिलमची-भर पानी पास सरकाकर अभयदान देगी, "लेह, खेल।"

दया बीजी को कपड़े धोते देख कुढ़ेगा; पर मुंह से बोल न फूटेगा। एक बार दबी जुबान से उसने मालकिन को याद दिलाया था कि कपड़े उसने धोकर 'टिनोपाल' भी लगा दिया है, तो बीजी बिफर उठी थीं, "ये धुले कपड़े हैं? बाबू जी ऐसी कमीज पहनकर आफिस जाएंगे? कल्लर देख, मैल की लकीर नजर नहीं आती? बनियान के बाजू कितने पीले पड़ गए हैं, यही टिनोपाल लगाया है?"

बीजी कपड़े अपने हाथों से धो लेती, खासकर बाबू जी के। सफेद बगुले के परों जैसे बेदाग कपड़े देखकर बाबू जी की तबीयत खुश हो जाती। विकी तो उस दिन कालेज गोल कर जाता, जिस दिन बीजी के धुले व प्रेस किए कपड़े पहनने को न मिलते। दया घर के चद्दर-तकिये धोता बुड़बुड़ करता रहता, "बड़े मियां तो बड़े मियां छोटे मियां सुबहान अल्लाह!"

बाऊ जी के रसूख से प्रभावित इंजीनियर साहब ने सड़क-मजदूर दया को उनके घर छोटे-मोटे काम करने के लिए रखा था। बाऊ जी ने भी सोचा, चलो, देशी को सुख-सुविधा होगी।

सबेरे से पूरा ही दिन घटती रहती है। पर बीजी की आदतें
बदलने वाली थीं ? बड़ा काम करना, बीजी उस काम
दुबारा करतीं।

'बावलापन'' बाऊ जी चिढ़कर कहते, 'बावली है।''

सुरेश देखता तो चुटकर मुस्कान जड़ देता 'नहीं, बुढ़ापे
सनक।''

सनक नहीं तो और क्या ? कड़ी दोपहरी में जब लोग खिड़कियाँ दरवाजे बंद कर ठंडे कमरों
करवटें बदलते रहते, बीजी सिलाई-कढ़ाई, पुराने चीथ
की मरम्मत, कुछ-न-कुछ लिए रहतीं। न हो तो गद्दे-रजाई
उधेड़तीं।

'किसा काम रखा है घर में ? सर्दियों के काम गर्मियों
और गर्मियों के काम सर्दियों में। तकिया बनाम दुहरा ही बीजी
फिरकी की तरह इधर-उधर घूमती रहतीं। मन मानो तो उन्हें
उन औरतों से बेहद चिढ़ थी, जो आधा दिन चारपाइयों पर
या बिखर-बिखर गप्पें हाँकने गुजारा करती हैं।

बीजी हरदम चौकन्नी, कहाँ खटका हुआ ? तार क्यों झन
झनाया ? जरूर किसी ने खींचकर कपड़ा उतारा है। कितना
समझाओ, 'भई, कपड़ा जरा, सावधानी से उठाया करो; पर
कोई माने भी, तब न।'

बीजी का दिल भी बड़ा नाजुक था। शुरू से ही ऊँची
आवाजें वे सह न पाती थीं। सुरेश कोठे की सीढ़ी धम्म-धम्म-
कर लाँघता, तो बीजी की घबराहट बढ़ जाती। हवा से खिड़-
कियाँ-किवाड़ पटाक-पटाक बजते, तो बीजी हर खिड़की की
सिटकनियाँ चढ़ातीं, हर दरवाजे का स्टापर लगातीं। सुरेश
इसे भी सनक का ही असर बताता। उसके अपने कारण
थे।

एक खामोश, तपती दोपहर उसने सरोज को अपने कमरे में बुलाया था। सोचा, विकी कालेज में है, बीजी कमरे में दरी डालकर मशीन में लगी हैं, एकाध घंटा तो लगी ही रहेंगी; पर तौबा! जाते-जाते ड्योढ़ी के दरवाजे में सरोज के पैरों की जरा-सी आहट क्या मिली कि मशीन छोड़कर नंगी धूप में 'कौन है' चिल्लाती बाहर निकल आईं। सुरेश ने खिड़की के कांच से उचककर नीचे खड़ी बीजी को देखा, तो सांस रोककर आंखें मूंदे चारपाई पर चित लेट गया। बीजी अधखुला दरवाजा देखकर बुड़बुड़ करने लगीं। छत की सीढ़ियां लांघकर कड़ी धूप में सरोज के आंगन में झांकने लगीं।

सुरेश मां को मान गया, "कमाल की जासूस है।"

सरोज जाते-जाते चप्पलें हाथ में लेकर जाना भी न भूली थी; पर बीजी की घ्राण-शक्ति भी गजब की थी, फिर इश्क-मुश्क भला उनसे कैसे छिपता?

बेटे कभी-कभार मन बहलाते, तो वे आंखें मूंद लेतीं; पर ज्यादतियों पर बेहद नाराज हो जातीं, क्योंकि सुरेश-सरोज के संबंधों में वे सरोज को ही दोषी ठहरातीं, "ये आजकल की छोकरियां!" वे कान पकड़कर तौबा करतीं, "मुंह अंधेरे सरोज छत पर निकल सुरेश के कमरे में ताक-झांक करती है। बुड्ढा बाप बीच छत में सोया पड़ा रहता है। ठीक उसकी नाक के नीचे बेटी खुलेआम मुंडेर लांघ जाती है। कभी नहाकर चोटी बांहें उठा-उठाकर बाल झटका करेगी। धूप उतरते ही किताब लेकर मंजे पर बैठी रहेगी और आधी-आधी रात तक टेबिल लैम्प लगाकर पढ़ाई करती रहेगी। पढ़ने की इतनी ही शौकीन होती, तो दो बार इण्टर में गोल न हो जाती। बाप समझता है, बेटी पढ़ाई करती दुबलाई जा रही है। बेचारे की आंखों पर ममता ने पर्दा टांग दिया है। बेटी के चरित्तर को कैसे पहचान

के झूले। छांह में रस्सी-टप्पो से लेकर आंखमिचौनी और स्टाप के चंचल खेल।

बड़ा होकर विकी जब मा को कंजूस की थैली-सी कसकर पकड़ी उन यादों की गांठें खोलते देखता तो लाख यत्न करने पर भी मां को एक चुलबुल-शोख लड़की के रूप में टहनियों पर सावन के झूले झूलती, लंगड़ी खेलती, खिल-खिल हंसती न देख पाता। मां के चेहरे पर जाने कब और कैसे एक निष्ठावान-कामकाजी औरत का व्यस्त और कुछ-कुछ रूखापन लिए चेहरा चिपक गया था, जिस पर कोई भी भाव ज्यादा देर तक न टिक पाता, क्योंकि क्षणांश में वे यादों के लोक से यथार्थ की खुरदरी जमीन पर लौट आतीं।

विकी पीपल के नन्हे हाथों को फैलते-सिमटते देखने में लीन होता कि बीजी अचानक मुंडेर पर कुछ झुककर पीपल के तने से टेक लगाए गणेश जी को देख लेतीं। तभी भगवान के इर्द-गिर्द घेरा डालकर ऊंघते हुए दो-चार कुत्तों पर उनकी दृष्टि जाती। बीजी के सीने के भीतर तब अजीब-सी बेचैनी करवट लेने लगती। विकी को गोद से उतारकर वे भीतर से बदरों को भगाने वाला बांस ले आतीं और पीपल की डालों को खटकाने लगतीं। 'दुर-दुर' करती, ऊंची आवाजों से कुत्तों को खदेड़ने में जुट जातीं। नींद के आलम में सराबोर जानवर, उनींदी आंखें ऊपर उठाकर गुस्से से बीजी को घूरने लगते और पूछ से मक्खियां हटा दुबारा टांगों में सिर घुसाकर लेट जाते। इस बेअदबी से बीजी की सहनशक्ति जवाब देने लगती। दो-चार छोटे-बड़े कंकर-पत्थर फेंककर वे उन्हें भगाने पर कमर कस लेतीं। विकी नन्हे-नन्हे बट्टे लाकर मां को थमाता रहता।

उधर छत से लगे कमरे में पेरीमेसन के किसी सनसनीखेज घटना व्यूह में उलझा सुरेश पत्थर मारने की आवाज सुनकर

बीजी ने एक बार देखा, तो पंडितानी को टोका। पंडितानी भी महले पर दहेमा दे गई। झट से बोल उठी, "अपने मुड़े को रोक लो न बीजी !"

पर बीजी न मानी, "मुंडों का काम तो ताक-झाक ही करना है। औरत को शर्म चाहिए।"

फिर भी यह सच था कि सुरेश उनकी दुखती रग था। उसकी हरदम दीदें फाड़-फाड़कर देखने और ताक-झाक करने की आदत से बे-ज़ार थीं। कई बार उन्होंने बेटे को समझाया-बुझाया; पर तब तक बेटा सीख लेने जैसी भली आदतों को फ़ालतू समझने लगा था।

एक बार तो बीजी के सामने ही उसने खेल-खेल में पंडितानी की नंगी पीठ पर निशाना साधकर ढेला मार दिया। उस दिन बीजी ने उपवास किया। बीजी गुस्सा होतीं तो दो ही तरीकों से अपना आक्रोश व्यक्त कर देतीं। एक, दिन-भर अपने-आप से बुड़बुड़ और दूसरा पूरे दिन मुंह में दाना न डालकर भूख हड़ताल। सुरेश एकाध बार मां से कहकर खाना खा लेता। विकी रुआंसा होकर मां को घेरे रहता। मां शाम को भी खाना न खाती, तो विकी भी खाना न छूता।

बात बाऊ जी तक पहुंच जाती तो पत्नी को झिड़कते, "क्या बचपने की बातें हैं। ऐसे ही बेटा सीख-समझ जाएगा।"

बाऊ जी बच्चों के सामने ही अपने हाथ से रोटी का कौर तोड़कर खिलाते, तो बीजी के कान और कपोल उलझन, शर्म और मान से आरक्त हो जाते।

विकी ताली बजा-बजाकर ख़ुशी का इज़हार करता। बीजी उसकी पीठ पर प्यार-भरी धौल जमा देतीं, "चल हट बेशरम।"

बीजी का रूठना और मिथाने-समझाने के लिए सत्याग्रह करना शायद अन्त तक जारी रहा; पर बाऊ जी का मनाना

जारी न रख सका। मीना मौसी की मैत्री के बाद, तो वैसे वे घर कम आया करते थे। बीजी आधी-आधी रात तक खाना लिए बैठी रहतीं, बाऊ जी की आहटों को सूंघती हुईं।

बीजी ज्यादा देर धोखे में न रहीं। हां, बाऊ जी को आधी-आधी रात तक रोकने वाली मीना मौसी होंगी, इसका पता उन्हें काफी देर बाद चला। जब असलियत मालूम हुई, तो बाऊ जी काफी आगे निकल चुके थे। बीजी की छोटी-सी गृहस्थी में घुन लग चुका था। बीजी इस घुन को फैलते देखती रहीं। अपने जीवन के अन्तिम सत्य को खंडित होते देखना और सह लेना बीजी के बस की बात नहीं थी। वैसे पति की नोक-झोंक, लड़ाई-झगड़े वह हंसकर सह लेतीं। इसे पुरुष की स्वभावगत लाचारी समझकर अदेखा-अनसुना भी कर देतीं।

तभी तो, जब मनोज की चाची ने एक बार बाऊ जी के गुस्से को लेकर छींटाकशी की, तो बीजी मान-भरे स्वर में बोलीं, "गुस्सा? मैं दो दिन न बोलूं, तो तीसरे दिन शाम ढलते ही मुझे बुलाने आते हैं। बेटों का भी लिहाज नहीं रहता।"

कई दिनों का अबोल वे हंसकर सह लेतीं। इस आशा से कि उनका पुरुष कहीं गहरे में, उनके अस्तित्व से जुड़ा है। उनका गुस्सा तो बस, सावन की झड़ी है, अभी बरसा, अभी थमा।

किस्सागोई और बेहूदगियों पर बीजी कम ही विश्वास करतीं। वे इस बात को मानकर चली थीं कि बैठे-ठाले निठल्ले लोगों का काम ही बिगाड़ वाली बात करना है।

एक शाम अचानक, बिना कोई चेतावनी दिए, उनके सभी विश्वास ढह गए। गर्मियों की सांझ थी। बीजी विकी को लेकर ... का कपड़ा खरीदने निकलीं। रास्ते में ख्याल आया कि ... मौसी को लेकर चलें। उनकी पसंद को वे हमेशा दाद देती

सीढ़ियां लांघकर मा-बेटे मीना मौसी के कमरे तक पहुंचे। बेना सिटकनी लगा दरवाजा छूने-भर से ही खुल गया। विकी भीतर झांककर, पल-भर दरवाजे पर ही ठिठक गया। मां को गौर नजरों से देखते वह पलट गया और कंधों से घेरकर उसे वापस लौटाने लगा।

बीजी ने असमंजस में बेटे को देखा और हाथ छुड़ाकर कमरे के भीतर चली गईं। भीतर बाऊ जी पलंग पर लेटे थे और मीना मौसी उनका माथा सहला रही थी। अधलेटी मीना मौसी अपने शरीर के तमाम आवरणों से बेखबर जाने किस भावावेश में उड़ानें भर रही थीं।

बीजी को भीतर आते देख अप्रत्याशित तेजी से हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और कपड़े संभालने लगी। बीजी धुंधलके में कुछ दूर खड़ी जैसे अचानक आए तूफान को सांसें रोककर झेलने की कोशिश करती रहीं। चेहरे से बूंद-बूंद रक्त निचुड़ता गया, हाथ-पैर शिथिल।

कुछ क्षण जड़-सी खड़ी रहने के बाद वे खोखले-से सपाट स्वर में बाऊ जी से संबोधित हुईं, "तबीयत क्या अचानक खराब हो गई ?"

बाऊ जी तब तक पलंग पर सभलकर बैठ गए थे। मुंह पर कोई हड़बड़ाहट का भाव नहीं, जैसे कहीं कुछ गलत न हुआ हो। सिर्फ माथे की एक शिरा हल्के से फड़क उठी। पत्नी के बेवक्त टपक पड़ने पर कुछ झुंझला गए। मीना मौसी को रोशनी करने का संकेत करते हुए बीजी से मुखातिब हुए, "क्या जासूसी करने आई थी ?"

बीजी इस आकस्मिक प्रश्न के आघात के लिए तैयार न थीं। उन्हें यह स्थिति वैसे ही काफी शर्मनाक लग रही थी। उस पर बाऊ जी का निराधार आरोप ! बीजी का मुंह क्षोभ व घृणा

से तड़पने लगा। विषम आवेश से थर-थर काँपने लगा।

विकी किसी अज्ञात भय से चौंक पड़ा। उसे लगा मां कुछ भी करेगी। उसने आगे बढ़कर मां की बांह पकड़ ली। बीजी ने नजर-भर में ही बेटे की मूक याचना को पढ़ा और हल्के से दबाकर तसल्ली दी।

अपने भीतर दबाकर ज्वालामुखी को ढंके उन्होंने भस्म करने वाली नजरों से बीना मौसी को देखा। कुछ अस्पष्ट-से बोल उनकी जुबान से निकल पड़े "उम्र-भर का जहर तूने मेरे लिए ही सजो रखा था नागिनी!"

और बीजी लगभग भागती हुई लौट पड़ीं। गोया रुक जातीं तो उनके भीतर का उबलता हुआ लावा फूटकर बाहर आ जाता। राह-भर विकी मां के कदमों से कदम मिलाने के लिए दौड़ता रहा।

बीजी घर पहुंचकर सीधी अपने कमरे में घुस गईं। पलंग पर औंधी लेटती हुई घुटी आवाज में पीछे-पीछे परछाईं की तरह चलते विकी से बोलीं, "जाओ, मुझे अकेली रहने दो।"

विकी बिना बोले हट गया। बीजी की आवाज में कड़क थी, किसी मोह-भरे अनुरोध का लिजलिजापन नहीं।

उस रात विकी सहमा-सहमा किसी भी अघट की मनहूस भावनाओं से त्रस्त जागता रहा; पर रात में कोई भी घटना घटी। सुबह हर रोज की भांति वह अपने दैनिक कार्यों में लगी नजर आईं। नहा-धोकर नाश्ता बनाना, कपड़े धोना, तरकारी लेने बाजार जाना।

दया को उन्होंने सड़क पर काम करने के लिए भेज दिया। वे अपने को पहले से भी ज्यादा व्यस्त रखने लगीं। घंटा-फुरसत मिलते ही वे किसी सखी-सहेली के यहां चली जातीं। घर में खाली बैठे रहने से उनका दिल घबरा उठता।

शाम का अभ्यासवश वे ड्योढ़ी में निकल आतीं; पर बाऊ जी को टक्की उतरते देख उलटे पैर भीतर चली आतीं।

बाऊ जी उस रोज की अप्रत्याशित घटना के बाद जल्दी घर लौटने लगे थे। खाना खाकर वे ताजा धुले आंगन में मंजा डलवाकर लेट जाते। बांहों का तकिया लगाकर आकाश निहारा करते। बीजी कभी सरिया कभी पानी का गिलास थमाया करतीं। *एक निःशब्द मौन उन्हें घेरे रहता।* विकी कभी-कभार पास बैठकर दोनों के बीच पुल बनाने की कोशिश करता। किसी वार्ताखंड, किसी भूली हुई घटना या किसी हलके-से मजाक के माध्यम से उनके बीच फैली बर्फीली ठंड को आंच देने का साहस करता; पर 'अह', 'ऊह' के सिवा कोई कुछ न बोलता।

विकी अपने आत्मालाप से ऊबकर वक्त से पहले नींद का बहाना बनाकर वहां से उठ जाता। बीजी कोई गिला, कोई शिकवा जुबान पर न लातीं और बाऊ जी किसी प्रकार की सफाई न देते, फिर भी यह सच था कि बीजी-बाऊ जी के बीच एक दूरी बढ़ती जा रही थी। आतंरिक रूप से अलग होते पति-पत्नी पुनः लगाव के कारण अपने भीतर फिर ढूंढ न सके। भीतर की टूटन यहीं से शुरू हो गई थी।

कोई आठ-दस दिन बाद ही बाऊ जी दौरे पर निकल पड़े। महीने-भर का टूर था। बीजी ने सामान बांधा, कपड़े-लत्ते रखे, थोड़ा-बहुत खाने-पीने का सामान भी रख दिया।

"यह सब क्यों ?" बाऊ जी सामान देखकर अभ्यासवश ही बोल पड़े।

"दूर रहकर कभी घर की चीज खाने का भी मन करता है न ?" कहते हुए बीजी के पीले कपोलों पर हलकी-सी हरकत हुई, भावहीन-सी हरकत। बात कहते ही उन्होंने अपने शब्दों की अर्थहीनता को महसूस किया।

तो मां के साथ जाते लाज लगती है। बाऊ जी को तो अप काम से ही फुरसत नहीं। हफ्ते में एक छुट्टी का दिन आता है उस दिन भी संगी-साथी ताश-पत्ते लेकर घेर लेते हैं। उस प वे धार्मिक पिक्चर देखते भी नहीं।"

पर वह पहले की बात थी। बाद में उन्हें कुछ भी न सुहाया। वह बेटे को रूखा-सूखा-सा नकार थमा देती, "तू जा रे, मैं क्या करूं आकर ?"

मां की बढ़ती निराशा और अबोल से खिन्न होकर विकी ने एक बार बीजी से कह ही दिया, "तुम ऐसे रहोगी, तो मैं बोर्डिंग में चला जाऊंगा। ऐसे ही बड़ा मन लगता है न इधर ?"

बीजी ने बेटे को उदास आंखों से देखकर कहा, "विकी ! घर तो तुम लोगों का ही है। अच्छा या बुरा, जैसा भी समझो। अभी तो मैं जिंदा हूं मेरे रहते घर छोड़ने की बात कैसे करता है रे तू ?"

मुंह फेरकर बीजी रोने लगी थी। विकी के भीतर तरलता का ज्वार उमड़ने लगा। मां को उसने हमेशा एक व्यस्त काम-काजी के रूप में देखा था, जिसके चेहरे के हर भाव से आश्वस्ति का रंग छलक पड़ता। सधी हुई आवाज में कभी-कभार ही कोई कंप आ जाता।

यह मां कौन थी। तन-मन से कमजोर, आर्द्र, जरा-जरा-सी बात पर छुई-मुई-सी कुम्हलाती। विकी इसे कहां पहचानता था।

तब विकी बाऊ जी पर नाराज होने लगता, बेहद। इतनी समर्पित मां के साथ धोखे या छल का व्यवहार ?

बीजी मीना मौसी को मानती बहुत थीं। बहनापा जोड़ रखा था। एक बार उसने कहा भी कि इधर ही आकर रहे। ... क्या रखा है ? साथ रहेंगे, तो दोनों का मन

लगा रहेगा।

तब मीना मौसी ही नहीं मानी थीं। शायद बाऊ जी की आमर्शन से उन्हें डर लगा हो। एक घर में रहकर वह बाऊ जी से दूर नहीं रह सकती थी और शायद बीजी और बाऊ जी के बीच दीवार बनकर जीना उन्हें पसंद भी न था; पर उससे क्या फर्क पड़ा ? बाऊ जी पोजेसिव प्रकृति के थे, हार न माने। उन्होंने घर-परिवार के सारे दायित्व पत्नी के कधों पर डाल दिए और बीजी···?

घर की चक्की लय में चलाते, एक दिन उन्हें मालूम पड़ा कि चाक की कील बेकार हो गई है, फिर चक्की न चली। कुछ दिन घिसट-घिसटकर चलाया, पर कितनी देर। रुकना तो उसकी तकदीर बन गई थी। मा ने बिस्तर पकड़ा और दो महीनों के भीतर ही छुट्टी ले ली।

मोह-ममता के कोटर से विदा लेते बीजी ने किसी से यह न पूछा कि मेरे बाद इस घर का क्या होगा। एक नि संग भाव ओढ़कर उन्होंने सभी सिलसिले से कन्नी काटकर आँखें मूद ली।

पाँच

बाऊ जी की मौत से तनहाई का-सा आलम पसरा है। कुछ ऐसा लगता है जैसा मौतों की धुन्ध घर-भर में छा गया था। ऐसे लगता ही है कि अब घर में बाऊ जी और मुंशी भी कहीं न कहीं उनके दुःख में भागीदार थे। इस वक्त सिर्फ खानी-खामी घर में रोता मातम को अकेला मीना मौसी के साथ झेल रहा है। उस औरत के साथ जो बरसों उनके साथ जुड़ी रहने पर भी उनकी कुछ न बन सकी।

प्यारे-सज्जे कमरों के लिए मीना मौसी ने दुनिया-भर एक तरफ हटाकर कमरे में बड़ी दरी बिछा दी है, जिस पर मातमपुर्सी के लिए आए नाते-रिश्तेदारों के अनगिनत पैरों के धूल-भरे निशान उभर गए हैं। इन उलझे निशानों में बाऊ जी का विशिष्ट निशान खो गया है। बाऊ जी की खाली जगह ने भरी-पूरी घर को मुर्दे मकबरे में बदल दिया है।

आज यह विश्वास करना कठिन क्यों लग रहा है कि कभी इस कमरे के खुले-खुले उजाले में बाऊ जी की गहन-गंभीर आवाज में ठहाके गूँजे होंगे। आधी-आधी रात तक दोस्तों की महफिलें जमी होंगी, कभी संगीत की स्वर-लहरियों ने रात के

सीने पर करवटें ली होंगी, कभी बीजी से मीठी छेड़छाड़ हुई होगी। बाऊ जी ने कभी सुरेश की खुराफातों से तंग आकर मझले बेटे को डांटा होगा और बाद में रात-भर उनींदी आंखों से, ढहते स्वप्नों के बांधों को बांहों से ढककर बाऊ जी ने पानी की प्राचीरों को बांधने के प्रयास किए होंगे। इसी कमरे में मीना मौसी के साथ अंतरंग आत्मीयता से सने छुटपुट बोल बोले गए होंगे।

सब कुछ अविश्वसनीय-सा लग रहा है, लगता है एक अरसे से यह कमरा इसी तरह सूना पड़ा है। सदियों से इस घर की बेजान दीवारें इसी तरह मातम में सिर झुकाए खड़ी हैं।

इस सबके बावजूद विकी जानता है कि ऐसा नहीं है या ऐसा नहीं था। बाऊ जी की ज़िन्दादिली तमाम टूटन के बाद भी उनकी के इस आखिरी मकान को घर बनाए रखने में समर्थ रही थी। यह घर जहां बीजी के तर्कों से परे विश्वासों-आस्थाओं का मंदिर था, वहां बाऊ जी की अपेक्षाओं और उन अपेक्षाओं को यथार्थ में ढालने की योजनाओं का एक मजबूत किला भी था। इस किले में बाऊ जी ने अपनी आशाओं की खुशनुमा बेलों को तमाम ईमानदारी से रोपा और सींचा था।

बीजी के साथ बतियाते वे अक्सर कहा करते, "अपना मकान छोटा है। सोचता हूं छत पर दो कमरे और डलवा दूं।"

बीजी टोकतीं, "दो तो बेटे हैं हमारे। तीन कमरों में समाते नहीं हैं क्या? जब शादी-ब्याह होगा, तो देखा जाएगा।"

"तेरे को तो खाली शादी-ब्याह की ही बात सूझती है।" बाऊ जी पत्नी को मीठी-सी डांट पिलाते, "अरी, बेटे बड़े हो रहे हैं। पढ़ाई के लिए कमरे नहीं चाहिए क्या?"

बच्चों को लेकर बाऊ जी दरियादिल बन जाते। उनके

आता है।"

धीमी हँसती। उनके शांत चेहरे पर निष्कलुष हँसी बाऊ
जी को भली लगती। शांत-सौम्य मनःस्थिति में वे घण्टों बै
रहते। खुले आकाश के नीचे ढेरों सपनों के ताने-बाने बुन
करते। सपने, जो भविष्य के लिए थे, अपने दो बेटों के खुशहाल
सुरक्षित भविष्य की छाया में जीवन-संध्या के थके दिन सुख
से बिताने के सपने, जैसे उम्र का कोई अंत ही न हो, जैसे बा
जी-बीजी हमेशा-हमेशा जीवन की महक को मुट्ठी में कैद कर
के लिए धरती पर उतर आए हों।

इसी सुखद भविष्य की आस में बाऊ जी कड़कती धूप
दिन-भर सड़कों पर खड़े-खड़े मजदूरों से नाप-जोख कर
कांट्रैक्टरों-इंजीनियरों की समस्याओं में सिर खपाने और प
से सराबोर थक-चुककर रात घिरे घर लौटते। तब ड्योढ़ी
राह पर आंखें बिछाए पत्नी को देखकर वे दिन-भर की थ
भूल जाते।

इस संतुष्ट स्थिति का आसन मीना मौसी के पदार्पण ने
पास ही हिला दिया। बाऊ जी के लिए मीना मौसी का
मन बिल्कुल अप्रत्याशित था। वे चाहना न चाहकर भी
औरत के साथ खिलवाड़ न कर सके। पत्नी द्वारा घर-गृहस्थ
सभी सुख उपलब्ध कराने के बाद भी बाऊ जी के भीतर
कोना खाली था, जो मीना मौसी के संपर्क में आते ही फो
तरह दुखने लगा। बार-बार भीतर के उस खालीपन से
बाऊ जी मीना मौसी को उस नितांत वैयक्तिक कोने में
को क्यों और कैसे बेताब हो उठे इसका बार में और साथ
करने के बाद भी वे कोई उत्तर न पा सके।

होता भी नहीं।

लोगों की अपेक्षाओं को संतुष्ट

की अनथक कोशिशों के बावजूद मीना मौसी के पास आकर वे सब कुछ भूलना चाहते थे। मीना मौसी ने पहले-पहले बहुत विरोध किया, "नहीं, मैं दीदी से किसी प्रकार का विश्वासघात नहीं करूंगी।"

"विश्वासघात ?" बाऊ जी सोचते, बीजी की आकांक्षाओं को तो उन्होंने ही विस्तार दिया था। बीजी पति, घर और बच्चों की छोटी-बड़ी जरूरतों को पूरा करते, थोड़ी-सी हंसी-मनुहार से ही संतुष्ट थीं। गृहिणी, पत्नी और मां, इन संज्ञाओं के मोटे-खुरदरे अर्थों के बाहर उनकी आकांक्षाओं की लक्ष्मण-रेखा खुदी थी। एक छोटे-से शामियाने में वे सुरक्षित थीं। इसके ऊपर भी कोई आकाश है, बीजी ने कभी न जाना।

मीना मौसी बीजी की हदों से बाहर थी, बिलकुल अलग, एक संपूर्ण प्रेमिका। उनका और बाऊ जी का भावभीना संबंध विनिमय की सीमाओं से परे था, जो कुछ काल के लिए अजाने सुख से सराबोर करते उन्हें विशालता से भर देता। एक ऐसी स्त्री से जुड़ना, जो देने के सिवा कुछ जानती नहीं, जिसके देने की कोई लक्ष्मण-रेखा न थी, बाऊ जी के स्नेह-पिपासु मन को असीम औदार्य से भर गया था।

मीना मौसी का अंधेरा अतीत उन्हें सालों कोंचता रहा। जिंदगी की खुरदरी सच्चाइयों व क्रूरताओं से जख्मी इस बेजुबान औरत को वे अपने मन की भीतरी तहों में बैठाकर सभी संभाव्य सुख उसकी झोली में डाल देना चाहते थे। मीना तमाम सुखों से रिक्त, प्यासी, इस असीम स्नेह-बौछार को कब तक अस्वीकार करती ? जिस क्षण वे दोनों पास आए, भीतर की प्यास हदें तोड़कर उमड़ते आकाश को बाहों में, गहने के लिए बेताब हो उठी। बाऊ जी उस क्षण केवल प्रताप बने रहे और प्रताप को पहली बार लगा कि बंधन में ही मुक्ति है। अपने

विरोध उनकी जुबान पर आ भी कैसे सकता था ? बाऊ जी के जर्द चेहरे पर उदासी का आलम पसरा था। सलवटों-भरी कमीज और कितने दिनों की पहनी मैली-मुचड़ी हुई पैंट उनकी मानसिक उथल-पुथल को उभार रही थी। मीना मौसी उदासी, सहानुभूति और करुणा की त्रिवेणी में नहा उठीं।

'जो भी मीना के साथ जुड़ता है, दुःख ही क्यों पाता है ?' एक प्रश्न फिर मन में कौंधा और आह की तरह फूट पड़ा।

बाऊ जी ने बाल सहलाए, "प्रताप के साथ भी जो जुड़ा, सुख नहीं पा सका, मीना ! तुम्हें आज भी किसी सुख का लालच देकर साथ चलने के लिए नहीं कह रहा। बस, थोड़ा-सा सहारा चाहिए। मुझसे ज्यादा, खिसकती ईंटों वाले मेरे घर को।"

बेटों का नाम बाऊ जी ने न लिया। बेटे माँ की जगह मौसी को न देख सकेंगे, वे बहुत पहले जान गए थे। सगे-परायों की उन्हें चिन्ता न थी। वे जानते थे कि कुछ दिन गर्मागर्म चर्चों-बहसों के बाद वे शान्त होकर अपनी-अपनी खोहों में लौट जाएंगे। किसके पास इतना समय है कि दूसरों के सिरदर्द हमेशा झेलता चला जाए ?

सुरेश के लिए बाऊ जी के मन में जो मलाल था, उसकी तीव्रता बहुत कोशिशों के बाद कम होने लगी थी। साम, दाम, दंड, भेद की चारों नीतियों में विफल होने के बाद उन्होंने होनी समझकर बेटे के कारनामों को नजरअंदाज करना सीखा था। धीरे-धीरे वे उसकी ओर से निःसंग होने लगे थे; परन्तु जब विकी ने दो टूक शब्दों में घर छोड़ने का एलान किया, तो बाऊ ... -खुची आशाओं का वही ... विकी को भी रोका ? ... बनने का प्रयास

तानपूरे पर थिरकती अंगुलियों के साथ मीना मौसी की आवाज सोये वातावरण में लरज भर देती, पर बाऊ जी पहले की तरह उस लरज में खुद को भुला न पाते। मन किन्हीं दूर की राहों पर भटकता रहता। मीना मौसी की आवाज थमने पर शब्दहीन एकान्त उन्हें उदास कर देता। आत्मालाप करते वे स्वयं से ही प्रश्नोत्तर करते रहते। मीना मौसी नन्हे बच्चे की तरह सुलाने की कोशिश करती। आखें बंद करके तब भी वे बुदबुदाते रहते, "सोचता हूं, देवी ज्यादा खुशकिस्मत थी। आंखें बंद कर कई कड़वाहटों को झेलने से बच गई।"

मीना मौसी आर्द्र नजरों से सहलातीं, "जो जीते हैं वे भोगते हैं, सुख भी और दुःख भी। जीना क्या कम महत्त्वपूर्ण है?"

बाऊ जी ने दोस्तों की महफिलें भी छोड़ दी थीं। दफ्तर जाते और सीधे घर लौट आते। सभी नाते-रिश्तेदारों से वे कट गए थे। खोये-खोये-से रोजमर्रा के कामों को पूरा करते। मीना मौसी साथ देतीं, अपने अबोले से अनेक प्रश्नों के उत्तर देतीं। पता नहीं बाऊ जी के प्रश्नों के उत्तर मिले या नहीं, पर वे चुप हो गए। चुप और अपनी खोल में बंद।

हां, कभी-कभी आधी रात के वक्त, थककर सोई मीना मौसी को वे जगा देते "सो गई क्या?"

मीना मौसी हलकी आहट से उठ बैठतीं, "नहीं तो। पानी लाऊं?"

"नहीं, पानी-वानी कुछ न चाहिए। अगर नींद न आती हो तो...।"

"नहीं आती है, कहो?"

"वह गजल सुना दोगी? तुम्हारे गले से अच्छी लगती

छः

बीजी की मृत्यु के बाद बाऊ जी का घर जो टूट गया, स
न्त तक जुड़ न पाया। एक स्थिर अवसाद से, शिराएं चटका
ने दुःख से, बाऊ जी बीजी की मृत्यु से त्रस्त हो गए थे
ससे मीना मौसी का आगमन भी उन्हें न उबार पाया। ए
शुभ मौन बाऊ जी और मीना मौसी के बीच जड़ें पकड़त
या। मीना मौसी की लाख कोशिशों के बावजूद, बाऊ जी फि
हले की-सी मनःस्थिति में न आ पाए।

बच्चों का विश्वास शायद उन्हें बिखरने से रोक पाता
लेकिन उनके अविश्वास और आलोचनात्मक रवैये ने उन्हें भीत
क ढहा दिया। बोल उन्होंने ज्यादातर नहीं बोले; लेकि
उनका हर कदम फूंक-फूंककर उठता, हर बात नपी-तुली होत
और व्यवहार मीना मौसी के प्रति बेहद तिरस्कारपूर्ण रह
गा। सुरेश से बाऊ जी को बहुत उम्मीदें न थीं; पर विकी
घर छोड़कर उन्हें जबर्दस्त धक्का दिया।

विकी की अपनी समस्याएं थीं, बाहर-भीतर दोनों स
की मजबूरियां थीं और विकी की उम्र अभी इतनी पक्की, इत
दागदार नहीं हुई थी कि वह समय का स्वभाव या नियति

जाहि नाम लेकर सिसकियों से बातचीत कर लेता।

बीजी की काया पर आखिर अग्नि को समर्पित करते वक्त सिर्फ और सोने के गहने पर बीजी की मृदुल मुस्कान की बनी-सी रह गयी थी। वही घर जहाँ उसने जन्म लिया, जहाँ कभी उसके जन्म के गीतिगान गूंजे होंगे, जहाँ के आस-पास पर उसके नन्हे पाँव-किरदे पाँवों के साथ बीजी के नन्हे हुए पैरों के छाले पड़े होंगे, जहाँ जगह-जगह उसकी आ-लोच भरी बिखरी थी, वह घर इतना सूना, इतना उजाड़ ह गया सकता है कि पल-भर रुकने पर भी दम घुटता-सा महसूस होने लगे? इसकी कल्पना तक कौन कर सकता था?

बीजी की मृत्यु के बाद सभी औपचारिकताएं निभाई गईं। बुआ का आग्रह था, 'देखो अपनी आत्मा भर दे छोड़कर ग ई हैं, भरा-पूरा घर, लड़के-बाले। जिन्दगी में जिसकी आस उम्मीद की, सभी कुछ अधूरा ही तो रह गया। बहू का मुंह देखने की कितनी साध थी! उसके लिए पूरे व्रत-अनुष्ठान होने चाहिए। नहीं तो उनकी आत्मा भटकेगी!"

बुआ ने अपने विश्वास के अनुरूप-बीजी की आत्मा की शान्ति के लिए उपाय सुझाए।

"जो ठीक समझो, करो!" बाऊ जी का संक्षिप्त उत्तर था। व्रत-अनुष्ठानों में कभी उनका विश्वास न रहा, परन्तु बीजी के सोम-शुक्र के उपवासों का कभी उन्होंने विरोध भी न किया, बल्कि इनके उन दो दिनों वे याद करके बाजार से कुछ फल-वल खरीदकर ले आते और बीजी को साग्रह खिलाते। बीजी पति की इन छोटी-छोटी उदारताओं से पति के प्रति अह-सानमंद हो जाती। उन्हें लगता व्रत रखना सफल हो गया।

बाऊ जी ने भी अपना दाम्पत्य जीवन आपसी समझदारी से ही निभाया था। गो कि यह सच है कि बीजी जैसा आत्म-

लेता और संतुष्ट-सी मनःस्थिति में आ पाता। मन पर शायद तब मरहम-सी कोई चीज उसकी तकलीफ कम कर पाती; लेकिन उस वक्त लाख कोशिश करने पर भी मन को सुकून नहीं मिल रहा था। एक जड़ अवसाद के बीच उसे महसूस होता कि बीजी यहीं कहीं मौजूद हैं और खुली आंखों से सब कुछ देख रही हैं। यह घर छोड़कर वह कहीं जा ही नहीं सकतीं।

मुहल्ले के बड़े-बूढ़े बाऊ जी से सहानुभूति बताते, "क्या सद्गृहिणी थी बहूरानी। घर आएं मेहमान की खातिरदारी जो वे करती थीं, वो कहीं न देखी और न सुनी, भाई!"

"घर-आंगन क्या लिश्कता था उनके रहते।"

महिलाएं जोड़तीं, "इत्ते दिनों में ही देखो क्या राख उड़ती नजर आ रही है?"

"भगवान के गई देखो बहन! अपने कोख-भाग को पीछे छोड़कर। बेटों के कंधे चढ़कर अपने घर जाना क्या सबका नसीब होता है?"

गुप्ता जी की पत्नी दबी-सी आह छोड़कर जोड़ देती, "वो तो है बहन! पर ये जो लड़के-बाले पीछे छोड़कर गईं, इनको कौन देखेगा, खिलाएगा-पिलाएगा? घर तो एकदम उजड़ गया।"

उनकी आहें, कराह, चिन्ताएं विकी तक पहुंचतीं और वह दोहरे दुःख से गुमसुम हो जाता। चुप और अकेला।

शर्मा जी कथा-पाठ के बाद मजलिस के उठने भी, कभी-कभार बाऊ जी से बतियाते रहते। हमउम्र होने का एक फायदा या नुकसान यह भी तो होता है कि आदमी दूसरे के चाहे-अनचाहे भी, अपने खट्टे-मीठे अनुभव अगले तक पहुंचाना चाहता है और उसमें अचीन्हा सुख भी पाता है।

शर्मा जी अन्तरंगता के स्तर पर बातचीत की शुरुआत

बयान करने की इन औपचारिकताओं से घर की ज्यादा अकेला महसूस करता। कैसे रिवाज थे, कैसी रीतियां थीं! उनकी तरह पूर्तियों के साथ, पारस्परिक सुख-दुःख की बातें, बुजुर्ग-गोले की समस्याएं, एक-दूसरे के बारे में जानने की उत्सुकताएं वगैरह-वगैरह भी जुड़ी हुई थीं।

तभी बदलकर एक महिला शुरू करती, "बुड्ढी को घर छोड़ आई हूं। सो रही होगी, चलूं जी।"

दूसरी महिला को भी अचानक याद आता कि उन्हें भी अब चलना चाहिए, "हां, बहन! अपना मुंडा एम० ए० का इम्तहान दे रहा है। उसे कुछ खान-पान बना के दूं। उनके बिना तो रिवाज मानने रसे-रसे ही ऊपने लगता है। आजकल के मुंडे तो…"

तीसरी को लगता, काम तो उसे भी कम नहीं है, वह क्या बैठी-ठाली है? "चलो, सावित्री बहन! मेरे भी घर में दस काम पड़े हैं। उनको खाना देना है। देर हुई, तो ज्यादा मचा देंगे। वैसे ही गुस्सा नाक पर धरा रहता है।"

अपने-अपने दुःखों को एक-दूसरे से बयान कर वे कुछ हलकी हो लेतीं, तो घर-बार याद आ जाता। यह घर कभी औरत को छोड़ता है? वह कहां है न किसी ने कि मरती घर घर किसके हवाले करूं?

यानी महिला मरने को तैयार थी; पर विवशता यह थी कि घर छोड़कर मरा नहीं जा सकता था। विकी उनके संवाद सुनता और ज्यादा उदास हो जाता। शायद बीजी भी कभी इसी धारणा के तहत सोचती होंगी। घर के साथ उनका बेहद जुड़ाव उन्हें इसी तरह की मन:स्थिति दे सकता था; लेकिन जब जाना ही पड़ा, तो घर-बार बिना किसी को सौंपे ही आंखें मूंद लीं।

और बुआ बार-बार कहती रहीं, "देखो अपनी आत्मा घर में छोड़कर गई है। उसकी आत्मा की शांति के लिए कुछ करना चाहिए।" यानी कि उनकी आत्मा घर छोड़कर चली जाए। घर में भूत बनकर न चिपट जाए।

इसे डर-वहम कहें या जन्म-जन्मांतरों से चले आए विश्वास, मरकर आदमी को भूत बनने का खतरा था। वही आदमी, जो प्राणों से भी प्यारा होता है। जल्दी-से-जल्दी उसकी काया अग्नि को समर्पित की जाती है। मरने के बाद सन्दली देहें भी गन्धाती हैं। आत्माएं तो अमर हैं। एक देह छोड़ी, दूसरी में प्रवेश किया। बीजी भी मरकर एक अमर आत्मा बन गई थीं और पीछे मुट्ठी-भर राख छोड़ गईं, जिसे गंगा में प्रवाहित कर बीजी के अपनों ने उनके प्रति अन्तिम दायित्व से मुक्ति पाई।

अब? नाते-रिश्तेदार कहने लगे, "अब घर-संसार के धंधों में लगना चाहिए। मृतक के साथ मरा थोड़े ही जाता है। यह जन्म-मरण का चक्कर तो चलता ही रहता है।"

यानी जो गया उसका अस्तित्व ही समाप्त नहीं हुआ, बल्कि वह कभी था, इसको भी भूल जाओ। यानी आदमी की मृत्यु के साथ उस आदमी का शरीर ही नहीं, उसका नाम, उसका अर्थ भी मर जाता है।

लेकिन विकी ऐसा मान न पाया। बीजी के पांव के निशान, बीजी की सांसों की महक, बीजी के अस्तित्व की गंध, उन्हीं के इस आखिरी मकान को घर बनाने में समर्थ थी, उसके बिना यह मकान घर नहीं कहलाया जा सकता।

विरक्त, अकेला विकी कभी सुरेश के चेहरे को पढ़ता, कभी बाऊ जी की गतिविधियां निहारता। सुरेश को भी बीजी का सदमा झिंझोड़ गया था। आखिर वे उसकी भी मां थीं, लेकिन

इन दो भाइयों में एक बड़ा फर्क था। सुरेश अवसाद को झटकना सीख गया था और किसी गहरे दुःख में खुद को उबार नहीं पा रहा था।

सुरेश के दोस्तों का घेरा भी लम्बा-चौड़ा था। मनचले, हंसमुख दोस्त, जो वक्त के हर पल का उपयोग करना जानते थे, लेकिन लम्बोतरे चेहरे से ज्यादा उन्हें चौड़े-चकले चेहरे ज्यादा भाते थे। वे सुरेश के पास आए, उसे दिलासा देने, "मौत बड़ी बेदर्द होती है सुरेश ! पर लाइलाज भी। इसे कोई रोक पाया है ?"

एक के दर्शन के साथ दूसरा अपनी राय जाहिर करता, तीसरा अपने तजुर्बे, चौथा अपनी मुगालहमी, पांचवां अपनी समझदारी, "यार ! क्या औरतों की तरह आंसू बहा रहा है ? मर्दों की तरह हौसला रख।"

"मौत तो यार ! कोई कैलेण्डर भी नहीं रखती। क्या पता कल हम लोगों में से किसी की बारी आ जाए ?"

"और क्या ? यह सुदीप ही कैसा स्कूटर चलाता है ! परसों बस के नीचे आते-आते बचा। ड्राइवर ने एकदम ब्रेक लगा दिया। दो गज दूर उछलकर गिरा। स्कूटर के तो अंजर-पंजर बिखर गए।"

सुरेश ने भी मौत की सचाई को स्वीकार लिया। जिस जगह अपना वश न चले, उसके लिए कब तक रोना ? किसी भी सुरेश के दोस्तों की बातें सुनता, उनके तर्कों पर सोचता; लेकिन फिर भी वह सुरेश की तरह एलबम खोलकर दोस्तों को बीजी की तसवीरें न दिखा सका।

"यह इधर बीजी बाऊ जी के साथ बैठी है। शादी की तस-है।"

"यार, बीजी इसमें बड़ी यंग लग रही हैं। क्या उम्र रही

होगी उस वक्त ?"

"कोई पंद्रह साल।"

"अपनी मम्मी तो चौदह की ही थी; पर लगती थी इनसे बड़ी। जरा भरी-भरी हैं न ?"

"यह इधर नहर पर पिकनिक मना रही है। विकी गोद में बैठा है।"

"तू इधर टोकरी के पास क्या कर रहा है ?"

"ठीक से देख।"

"कुछ निकाल रहा है।"

"सुरेश ! तू तो पहले अपने पेट का ही खयाल करता है। पिकनिक-विकनिक तो बाद में। यह तेरे पापा पानी में पैर डाले बैठे हैं।"

दुःख को बाटना या भुनाना, शायद-यही समझदारी है। बाऊ जी भी क्या बीजी का अभाव इसी तरह भुना पाएंगे ?

विकी के मन में प्रश्न उठने और वह देखता, बाऊ जी बीच आंगन में मंजे पर लेटे आकाश के विस्तार में निहार रहे हैं। बड़ी देर तक गुमसुम। उनका अबोल बड़ा डरावना लगता।

बीजी की मृत्यु के दिन और रात कैलाश-रमेश वहीं रहे। बीजी का दाह संस्कार कर बाऊ जी, विकी, सुरेश आदि लौटे तो कैलाश ने ही बहला-दुलराकर उन्हें खाना खिलाया। गले में कौर अटकने के बावजूद पेट का गड्ढा तो भरना ही था। विकी के गले में रेत-सी फंस गई। कैलाश की मनुहार पर वह एकाध कौर तोड़कर पानी के साथ निगल गया। बाऊ जी-सुरेश भी एक-एक रोटी निगलकर उठ गए।

कैलाश ने उस दिन बड़ा सहारा दिया। विकी का सिर सहलाकर कंधे से टिकाया।

"विकी बेटा ! हौसला रख, माएं क्या हमेशा बनी रहती

उन दो आदमियों में एक बड़ा फ़र्क था। सुरेश अखबार की सुर्खियों में सिमट गया था और किसी गहरे दुःख से मुँह को उबार नहीं पा रहा था।

सुरेश के दोस्तों का घेरा भी लम्बा-चौड़ा था। मनचले, हमउम्र दोस्त, जो वक्त के हर पल का उपयोग करना जानते थे लेकिन लाशोंवाले चेहरों से ज़्यादा उन्हें चौड़े-चकले चेहरे ज़्यादा भाते थे। वे सुरेश के पास आते, उसे दिलासा देते, "मौत बड़ी बेदर्द होती है सुरेश! पर लाइलाज भी। इसे कोई रोक पाया है?"

एक के दर्शन के साथ दूसरा अपनी राय जाहिर करता, तीसरा अपने तर्क, चौथा अपनी हमदर्दी, पांचवां अपनी समझदारी, "यार! क्या औरतों की तरह आंसू बहा रहा है? मर्दों की तरह हौसला रख।"

"मौत तो यार! कोई कैलेण्डर भी नहीं रखती। क्या पता कल हम लोगों में से किसी की बारी आ जाए?"

"और क्या? यह सुदीप ही कैसा स्कूटर चलाता है! परसों बस के नीचे आते-आते बचा। पट्ठे ने एकदम ब्रेक लगा दिया। दो गज दूर उछलकर गिरा। स्कूटर के तो अंजर-पंजर बिखर गए।"

सुरेश ने भी मौत की सचाई को स्वीकार लिया। जिस जगह अपना वश न चले, उसके लिए कब तक रोना? किंतु भी सुरेश के दोस्तों की बातें सुनता, उनके तर्कों पर सोचता; लेकिन फिर भी वह सुरेश की तरह एलबम खोलकर दोस्तों को बीजी की तसवीरें न दिखा सका।

"यह इधर बीजी बाऊ जी के साथ बैठी हैं। शादी की तसवीर है।"

"यार, बीजी इसमें बड़ी यंग लग रही हैं। क्या उम्र रही

होगी उस वक्त ?"

"कोई पंद्रह साल।"

"अपनी मम्मी तो चौदह की ही थी; पर लगती थी इनसे बड़ी। जरा भरी-भरी हैं न ?"

"यह इधर नहर पर पिकनिक मन रही है। विकी गोद में बैठा है।"

"तू इधर टोकरी के पास क्या कर रहा है ?"

"ठीक से देख।"

"कुछ निकाल रहा है।"

"सुरेश ! तू तो पहले अपने पेट का ही खयाल करता है। पिकनिक-विकनिक तो बाद में। यह तेरे पापा पानी में पैर डाले बैठे हैं।"

दुःख को बांटना या भुलाना, शायद-यही समझदारी है। बाऊ जी भी क्या बीजी का अभाव इसी तरह भुला पाएंगे ?

विकी के मन में प्रश्न उठते और वह देखता, बाऊ जी बीच आंगन में मंजे पर लेटे आकाश के विस्तार में निहार रहे हैं। बड़ी देर तक गुमसुम। उनका अबोल बड़ा डरावना लगता।

बीजी की मृत्यु के दिन और रात कैलाश-रमेश वहीं रहे। बीजी का दाह संस्कार कर बाऊ जी, विकी, सुरेश आदि लौटे तो कैलाश ने ही बहला-दुलराकर उन्हें खाना खिलाया। गले में कौर अटकने के बावजूद पेट का गड्ढा तो भरना ही था। विकी के गले में रेत-सी फंस गई। कैलाश की मनुहार पर वह एकाध कौर तोड़कर पानी के साथ निगल गया। बाऊ जी-सुरेश भी एक-एक रोटी निगलकर उठ गए।

कैलाश ने उस दिन बड़ा सहारा दिया। विकी का सिर सहलाकर कंधे से [illegible]

"विकी [illegible] बनी रहती

"इसमें क्या पसन्द और क्या नापसंद ? जो भी दोगी चर जाएगा। बड़ा माड़ है न !"

सुरेश चिढ़ उठता। विकी के माड़ से, विकी की खामोशी से और सबसे ज्यादा बार-बार उसके साथ की गई अपनी तुलना से।

लेकिन विकी क्या करे, उसे सचमुच मां की पकाई हर चीज में अनोखा स्वाद आता है।

वही स्वाद बिजी के जाने के बाद खो गया। हर चीज को बेस्वाद बना गया।

विकी कई रोज अन्यमनस्क बिखरा-बिखरा घर में डोलता रहा। रात को करवटें बदलता। कभी उठकर खुली छत पर टहलने लगता। कभी लेटकर आसमान के तारों को अनझपकी नजरों से देखता रहा। तारों की मन्दाकिनियों में खोया कोई चेहरा तलाशने लगता। बीजी की खाली जगह उसे मौत से सवालों के जवाब मांगने पर मजबूर करती। क्यों मौत छीन लेती है जिन्दगी जब उसकी जरूरत होती है यहां ? कैसा तमाशा है यहां ? कौन बाजीगर नचाता है हमें अपने इशारों पर और लहूलुहान कर देता है बिलावजह ?

नींद कभी आती भी, तो सपने में बीजी को देखकर चौंक पड़ता। जागने पर अपने आसपास घुप अंधेरे में खुद को अकेला पाकर भयमिश्रित वेदना से पसीना-पसीना हो जाता।

वो अभी तो दिखी थीं बीजी की आंखें ? कभी दीवारों पर, कभी छत की मुंडेरों पर ! अभी तो चूड़ियों की छनक सुनाई पड़ी थी ? अभी कोई चुस्त हलके कदमों से छत लांघ गया ! सुराही से पानी तो ढाला था किसी ने !

आंखें खोलता, तो बाऊ जी सुराही से पानी निकाल रहे होते। वह देखता रहता, बाऊ जी भी रातों को ठीक से कहां

सो पा रहे हैं ! बढ़ी हुई दाढ़ी, बेतरतीब कपड़े, मुचड़े-मुड़े ! बाबू जी को इस दीन हुलिये में देखकर उसका दुख दो गुना हो जाता।

एक सुबह देर से आंख खुली। गडमड सपनों से सिर भारी हो उठा था। प्यास से गला भी खुश्क हुआ जा रहा था। पानी पीने रसोई में गया, तो देखा, बाऊ जी स्टोव में तेल डाल रहे हैं। एक तरफ परात मे ढीला-ढाला आटा सना पड़ा है, दूसरी तरफ आलू के मोटे-बेढ़ये टुकड़े परात मे पड़े काले हो रहे हैं। बाऊ जी की अंगुली में पट्टी बंधी थी। पट्टी पर खून का धब्बा जम गया था। शायद आलू काटते चाकू उंगली में लग गया था।

विकी को कैसा तो लगा ! गले मे ज्यों अचानक लोथ-सी फंस गई। जो आदमी परमाइशें करता ही थकता न हो, नये-नये पकवान खाने के शौकीन जिस आदमी ने कभी अपने हाथ से सुराही से उंडेलकर पानी भी शायद कभी ही पिया हो, हारी-बीमारी में भी पत्नी ने लड़खड़ाते पैरों से उठकर जिसे एक कप चाय बनाने की जिल्लत से बचा लिया हो, ऐसा छोटा-मोटा नवाब स्त्री पर अनजाने ही कितना आश्रित हो जाता है और उसकी मृत्यु के बाद कितना नि सहाय, कितना अटपटा महसूस करता है, इसका अनुमान विकी को उसी दिन हुआ, पहली बार। उसका पिता चूल्हा-चक्की का क्या करेगा ?

विकी को देखकर बाबू जी को अपने अनाड़ीपन का अह-सास हो आया। कुछ झेंपकर बेटे से बोले, "तुम और सुरेश बाहर खा लेना। मैं अपने लिए दो रोटी बनाता हूं। ज्यादा कुछ खाने की तबीयत नहीं है। अब रोज-रोज किस को परेशान करेंगे ?"

"पर बाऊ जी ! यह सब आप क्यों ? मेरा मतलब है, हम

भी तो थोड़ा कुछ कर सकते हैं, फिर नैके को बुलाएंगे, वह तो रसोई पकाना जानता है। आपने यह अंगुली में क्या कर लिया ?"

"यह तो कुछ खास नहीं। बस छोड़, टकवेंद ले आ मेरे लिए। आगे कुछ न कुछ करना होगा।" बाऊ जी ने धीमे से जोड़ दिया।

विकी ने सोचा, नौकर रखना होगा और क्या विकल्प है ? नौकर दीजी की जगह नहीं ले सकेगा, ले सकता हो नहीं था। यों कोई भी किसी दूसरे की खाली जगह पूर नहीं सकता। पर कुछ लोग खाली जगह में भराव का अहसास तो देते हैं।

बाऊ जी ने सोचा, अगर ऐसा कोई कर सकता है, तो वह मीना ही हो सकती है।

उस रात बाऊ जी भी दोहरे सोच में करवटें बदलते रहे। पास-पड़ोस, नाते-रिश्तेदारों की प्रतिक्रिया से वे विचलित होने वाले न थे। दूसरों की चिन्ताओं, टिप्पणियों या चेहमेगोइयों से उनकी कठिनाइयां हल होने वाली नहीं थीं। उनका घर बिना गृहिणी के सचमुच भूत का डेरा बन गया था। राख की ढेरी। इसमें गुलाब के फूल न खिलें; पर धूल भी तो नहीं उड़नी चाहिए। कम से कम प्रताप सिंह के रहते।

बीरो अब लौट नहीं सकती थीं। बाऊ जी के लाख पछतावे या सिर मारने के बावजूद यह सच वे जानते थे और मन को समझा भी सकते थे। अपने से ज्यादा उस वक्त विकी-सुरेश का खयाल सता रहा था। सुरेश को तो यों भी कोई शऊर ही नहीं था, खाने-पहनने का, घर-बाहर का। कोई देखने वाला हो तो शायद।

'शायद !' यह शायद उम्मीद का कोई नामालूम-सा चेहरा है, जो नाउम्मीदी में भी बार-बार झलक दिखाकर,

मीदें दिखाता है। काले बादलों में ज्यों बिजली कौंधकर
तों को सुझा दे ! पल-भर को ही सही, दीठ-भर के सामने
सड़क तो साफ हो जाती है।

बाऊ जी ने ज्यादा न सोचा। किसी से सलाह-मशविरा
न किया। वैसे भी यदि कभी वे सलाह-मशविरे दूसरों मे
र भी लेते, करते हमेशा अपने मन की ही थे, उनका
वेक जो भी सुझाता। वे जोखिम भी लेते और उसके नतीजे
गतने को भी तैयार रहते। यह बाऊ जी की खूबी थी।

इस बार बीजी के पन्द्रह-सोलह दिनों के बाद ही मीना
मौसी को घर लाकर बाऊ जी ने एक और जोखिम उठाया।

सुरेश ने तो देखते ही विकी से कह दिया था, "हमें क्या ?
बाऊ जी मीना मौसी को ले आए या पक्का ढगा की रसूलन
बाई को, हमें क्या फर्क पड़ने वाला ?"

शायद उसे फर्क पड़ा भी नहीं; पर विकी ? लड़कियों
जैसा भावुक, सवेदनशील मन लेकर पैदा हुआ विकी लड़कियों
जैसे समझौते न कर सका। कोशिश करने के बाद भी वह मां
की जगह मीना मौसी को न देख सका।

मीना मौसी ने आते ही घर सभाल लिया। दुल्हन तो वह
तब भी नहीं बनी, जब वेदी की परिक्रमा करके आई थी। यहां
तो न अग्नि का साक्ष्य था न तोरण-वन्दनवारों के बीच मंगल-
गानों का स्वागत। एक उदास घर मे परिचित-अजनबियों के
बीच वह अपनत्व और प्यार बांटने आई थी। प्यार, सवेदना,
सेवा कुछ भी नाम दो, मीना मौसी तो देने आई थीं, जो कुछ
भी उनके पास था।

लेकिन घर की देहरी के भीतर कदम रखते ही उन्होंने
विकी-सुरेश के चेहरों को देखा, तो भीतर तक धस गईं। पहला
अहसास यही हुआ कि उन्होंने जिन्दगी में एक और बड़ी भूल

कर दी है। विकी के चेहरे पर आघात की पीड़ा उभर आई थी और सुरेश बेहद लापरवाही से कंधे उचकाकर एक फूहड़ वाक्य बोल गया था, 'हमें क्या ? बाऊ जी मीना मौसी को ले आए या पक्का रंगा की रगूनन बाई को···।'

बाऊ जी ने भी यह वाक्य सुना था, पर वे विचलित नहीं हुए थे। उन्होंने जैसे पहले से ही सुरेश से इस तरह के वाक्यो-च्चारण की अपेक्षा की थी। उन्होंने सुरेश की बेअदबी के लिए उसे टोका नहीं, केवल मीना मौसी की बाह पर हल्का-सा सान्त्वना-स्पर्श देकर उसे घर के भीतर ले आए थे।

मीना मौसी ने चूल्हा जलाया। धुएं की शहतीर चिमनी से बाहर निकली और गृहस्वामिनी के आगमन की सूचना पूरे मोहल्ले को मिल गई। विकी धीरे-धीरे मुंडेर के पास खड़े होकर ऊपर से नीचे रसोई घर में झांकने लगा। आटे के टिन खोलने की हल्की आवाज सुनी। दबे-दबे कदमों से आगन पार कर तार से तौलिया उठा लाना देखा। बाऊ जी का चौके के पास कुर्सी खींचकर बैठना और आदेश-निर्देश देना देखा।

नहीं, यह सब विकी से सहा नहीं गया। उसकी मां की जगह कोई नहीं पाएगा। बीजी की चाल-ढाल में, उनकी उठा-पटक में, नंगे पैर आगन पार करने में, उसकी चूड़ियों की छनक में घर की स्वामिनी का गर्व छलकता था। यह दबी-दबी औरत बाऊ जी की कुछ भी हो सकती थी, घर का स्वामिनी नहीं। बाऊ जी के प्रति भी उस समय वह क्रूर हो उठा। वे इस औरत से न जुड़ते, तो शायद बीजी कुछ और जी लेतीं।

विकी को याद है, उस दिन वह खाना खाने नीचे नहीं आया। बाऊ जी ने नीचे से ही दोनों बेटों को आवाज लगाई थी। मीना मौसी चौके में रोटियां पोनी थालियां सजाकर रख गई थीं और बाहर सजे के पास छोटी मेज लगा गई थीं।

विकी ने, "भूख नहीं है। आप खा लो।" कहकर शायद
ी बार बाऊ जी के सामने मुंह खोला था। बाऊ जी थोड़ी
आंगन में मूर्तिवत् खड़े रह गए थे। यह विकी के विरोध
पहली आवाज थी।

"सुरेश ! तुम्हें भूख है ?"

उत्तर में सुरेश धमाधम सीढ़ी लांघता नीचे आ गया था
र मीना मौसी खाना परोसते थम गई थी। बाऊ जी विकी
। मनाने नहीं आए थे; लेकिन मीना मौसी थाली में रोटी-
ब्जी दाल ऊपर छतवाले कमरे में चली आई थीं, "खाना
ा लो !" बोलते उनकी नजरें जमीन से ऊपर नहीं उठी थीं।

"तिपाई पर रख दो। बाद में खाऊंगा।" विकी ने हाथ
तिपाई की ओर संकेत किया और आगे वार्तालाप पर विराम
गा दिया।

मीना मौसी खाना रखकर लौट गई थी। नीचे बाऊ जी,
सुरेश खाकर हाथ धो रहे थे। कुल्ला करने और टंकी के पास
पानी की धार गिरने की आवाजें आ रही थीं। सब कुछ असहज
होते हुए भी सहजता का आभास दे रहा था। विकी के भीतर
गर्म आंसुओं का सोता फूट पड़ा था। न, वह मां की जगह मीना
मौसी को नहीं सह पाएगा। कोई दूसरी उस जगह पर आ
जाती, तो वह शायद स्थितियों से समझौते कर लेता। वह
इस घर में एक दिन भी चैन से न रह पाएगा। मीना मौसी,
क्या आते ही एकदम मां की जगह घेर लेगी ? उसके आते ही
क्या मां विगत की एक याद-भर बनकर भुला दी जाएगी ?
बीजी की आशाओं-अपेक्षाओं का मंदिर क्या एक अजनबी औरत
का विलास गृह बन जाएगा ? ऐसी औरत, जिसने बहन बनकर
बीजी का मन जीता और सौत बनकर उसकी जिन्दगी छीन
ली !

विकी आज जान गया है कि उसका सोचना अपने-आप में क्रूर था। मीना मौसी को वह बिलकुल भी समझ न पाया था। तब उनका होना ही विकी को असह्य लगा था। बीजी की रसोई में, बीजी के कमरे में, बीजी के बिस्तरे पर, बीजी के घर-आंगन में एकछत्र राज्य करेगी यह औरत, जबकि वह बाऊ जी का हाथ भी मीना मौसी के कन्धे पर सह नहीं पाया था। विकी भीतर ही भीतर उबलने लगा था, क्योंकि वह मानकर चला था कि मीना मौसी ही बीजी की मृत्यु के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिम्मेदार थीं।

सुरेश ने दूसरे ढंग से अपनी प्रतिक्रिया दिखाई थी। बेहद लापरवाही ही नहीं, जान-बूझकर उसने घर में हंगामा खड़ा कर दिया। बाऊ जी के दफ्तर जाते ही वह यार-दोस्तों की महफिलें जमाता। हा-हा-ही-ही की सम्मिलित गूंजें विकी के सीने पर हथौड़ों की तरह पड़ती। वह कान तकिये से दबाए पड़ा रहता। परीक्षाओं के कारण छुट्टियां चल रही थीं; पर पढ़ाई में भी मन नहीं लगता था। ऊपर से सुरेश के यार-दोस्तों का हुड़दंग! उसको सुराफाते हर्दें तोड़ने लगी थीं।

मीना मौसी बाऊ जी के दफ्तर जाते ही कमरे में बन्द हो जाती। उन्होंने रेडियो स्टेशन जाना भी छोड़ दिया था। सुरेश के लिए इससे अच्छा मौका कहां मिल सकता था? कई लड़कियों को उन्हीं दिनों वह बेझिझक घर लाने लगा था। मोहल्ले वालों के साथ मीना मौसी भी देखतीं; पर कुछ बोलने का अधिकार उन्हें कहां था!

घर अच्छा-खासा तमाशा बन गया था। विकी आंख-कान मूंदे पढ़ने में मन लगाता। किताबों की अलमारी सुरेश के ही कमरे में थी। दरअसल पहले दोनों भाई वहीं इकट्ठा बैठकर पढ़ाई करते थे। पर इधर बीजी के जाने के बाद विकी अकेला

रहना चाहता था। सुरेश के दोस्तों का जमावड़ा भी कुछ ज्यादा ही रंग पकड़ने लगा था। ऐसे में पढ़ाई होना तो नामुमकिन ही था। एक बार किसी रेफरेन्स बुक की खोज में विकी भाई के कमरे में गया। दरवाजा बन्द था। उसने सोचा, शायद भाई सो गया हो। धीमे से दरवाजे पर दस्तक दी। न, दरवाजा भीतर से बन्द था। दो-तीन बार खटखटाने पर दरवाजे की फाक से सुरेश प्रकट हुआ।

"कौन, विकी! क्या चाहिए ?"

"वह अलमारी से रेफरेन्स... ...बुक।"

लेकिन विकी बात पूरी न कर पाया। भीतर से चूड़ि छनकने की आवाजें आईं। कपड़ों की रेशमी सरसराहट, ज जल्दी-जल्दी कोई कपड़े समेट रहा हो और एक मर्दाना आव "यार! उसे भी भीतर बुला लो। जवान लड़का है। थो दिल बहल जाएगा।"

विकी आधी बात कहकर पलट आया, हतप्रभ! ह बोलने के लिए होंठ खोलने से पहले ही उसे तन् के संबंध सुरेश की हिदायत याद आ गई, "तू बीच में टांग अड़ाना से सीख गया है गधे!"

नीचे सूने आंगन में धूप अजगर-सी लेटी-लेटी ऊंघ थी। ड्योढ़ी के दोनों कपाट खुले थे, बेझिझक। मनहूस खामोशी ड्योढ़ी से आंगन तक पसरी हुई थी। अब न किस डर था, न लिहाज। आवारागर्दी की खुली छूट थी। तार बाबू जी के कपड़ों के साथ मीना मौसी का दुपट्टा हवा से फड़फड़ा रहा था। और मीना मौसी रोज की तरह इस दोपहरी में भी अपने कमरे में बंद हो गई थीं।

वह धीमे-धीमे छज्जे से होता हुआ अपने कमरे की ओर लौट आया। छज्जे की मुंडेर पर एक मोटा बन्दर उसकी कमीज

दांतों से चिचोड़ रहा था। वह गुस्से में था। जब से बीजी गई हैं, यह कोई-न-कोई उत्पात मचाए रखता है। वह जो रोटियां खिलाती थीं, अब कौन खिलाएगा ?

विकी को उसे धमकाकर कमीज छीन लेना भी भारी लगा। गुस्सा करना तो वह जैसे एकदम भूल गया। सुरेश ने उसे चौंकाया नहीं था। उसकी आदतों से वह अच्छी तरह वाकिफ था; पर आज उसे जबरदस्त धक्का लगा था। अब तक जो होता था, वह सुरेश के निजी जीवन से संबंधित था, सो घर की बात घर तक ही सीमित थी। अब उसके कार्य-कलापों में उसके दोस्त भी साझेदार हो गए थे। घर अच्छा-खासा बाजार बन गया था। मूल्य, मान्यताएं, लिहाज, मुरव्वत ! यह सब तो सुरेश के लिए महत्त्वहीन था ही। उसकी कभी उसने चिन्ता नहीं की थी; लेकिन एक अच्छे घर-परिवार में जिन्दा रहने के लिए, जिस थोड़े-बहुत अनुशासन की जरूरत होती है, बीजी के जाते ही सुरेश ने उसे भी तिलांजलि दे दी।

न, विकी से यह सब न देखा गया। उसे लगा इस जगह से होस्टल में रहना हर हाल में बेहतर होगा। उसने बाऊ जी से अपना इरादा बता दिया और होस्टल में रहने चला गया।

घर से कट जाने की दिशा में उठाया गया यह विकी का पहला कदम था।

सात

फौज में भर्ती हुए सुरेश को अभी छः महीने भी न हुए थे कि बाऊ जी की सड़क-दुर्घटना का तार आ गया। एक बार सुरेश को विश्वास न आया कि तेज-तर्रार बाऊ जी, कभी किसी के सामने हार न मानने वाले बाऊ जी, मौत के सामने इतनी जल्दी घुटने टेक देंगे। तार हाथ में लिए वह जड़-संवेदनशून्य-सा खड़ा रहा। किसी ने एक्सीडेंट के तीन दिन बाद तार दिया था। मीना मौसी ने उसे ट्रंक काल कर दिल्ली से बुलवाया था। बाऊ जी अपने चहेते बेटे को देखना चाहते थे, पर सुरेश को रस्म-अदायगी के नाम पर बाऊ जी की मृत्यु का ही समाचार मिला, जबकि तीन दिन वे मृत्यु से लड़ते रहे थे। सुरेश रजौरी-पूंछ की सीमाओं पर तैनात सिपाहियों की पंक्ति में खड़ा रहा बेखबर, निष्कासित, उस घर की गतिविधियों से, जिससे नाता कटने के बावजूद वह किसी मजबूत सूत्र से अभी भी जुड़ा हुआ था।

सुरेश ने बड़ी शिद्दत से उस दिन महसूस किया कि उसकी सत्रह-अट्ठारह साल की जिन्दगी का जमा हासिल कुछ भी नहीं है। उसका यह आधारहीन विश्वास कि घर में वह

हमेशा पराया रहा, कभी किसी ने उसे चाहा नहीं, उस दिन पत्थर की लकीर-सा पक्का हो गया। पछतावे और दुःख से वह पागल हो उठा। क्या सचमुच ही उसकी कमी किसी ने महसूस न की? पिता को मृत्यु शय्या पर पड़े-पड़े भी बेटे सुरेश को आँख-भर देखने की इच्छा न हुई? उन्होंने उसे अन्त समय भी माफ न किया? हमेशा का आवारा और नाकारा समझकर घर-निकाला दे दिया?

कई दिन तक अपमान और दुःख का तीव्र ज्वार उसे जलाता रहा। सैनिक बैरक के बरामदे में खड़ा दूर तक फैली पहाड़ियों के विस्तार में आँखें गड़ाए सुरेश जाने सोच भी किन दिशाओं में भटकता रहा। घुप्प अंधेरे में, पहाड़ों के ऊपर गैस-लालटेनों के प्रकाशवृत्तों से आसपास की सैनिक चौकियों के अस्तित्व का बोध होता था।

नीचे खामोश रात में गरजती हुई उफनती नदी के किनारे रजौरी शहर सभी शोर-आतंक से बेखबर सोया पड़ा था। रात-भर उस शोर को सुनते, सुरेश अपने भीतर उठते शोर को भूलने की कोशिश करता रहा। नहीं, सुरेश कमजोर नहीं बनेगा। सुरेश ने अवसाद की मुद्रा चिपकाकर किसी की दया नहीं बटोरी है। एक अक्खड़ जिन्दगी जीते, सभी कोमल भावों के प्रति वह निःसंग होता जा रहा है। यही ठीक है। अब भीतर से उठती इस लिजलिजी भावना का क्या करेगा वह? उसकी खुरदुरी जिन्दगी में भावुकता की कोई जगह ही कहां बची है? मोह-ममता के बंधनों से तो वह सालों पहले कट गया था।

फिर भी, तमाम रात भुतही पहाड़ियों पर किसी दैत्य की लीलती आंखों-से चमकते गैस-हंडों को देखते वह चाहकर भी यादों की कड़ुवाहट से मुक्त न हो पाया। बीजी या बाऊ जी ने उसे समझने की कोशिश ही कब की? उनका प्यार क्या अपने

आदर्शों को थोपने और अपनी बनाई हुई लीक पर चलाने के लिए बाध्य करने की हद तक ही सीमित नहीं था ?

सुरेश ने लकीर का फकीर बनना पसंद न किया। वह ऐसा कर भी नहीं सकता था क्योंकि वह विकी न था। बचपन से ही बाऊ जी ने उसके सभी हठों-इच्छाओं को पूरा करते, उसे अपने ढंग से जीने के लिए प्रोत्साहित किया था, फिर बड़ा होते ही वह ज़िद्दी और हठी क्यों कहलाने लगा ?

सुरेश ! बीजी-बाऊ जी की पहली औलाद। बीजी को मलाल था, "बेटा लाड़ में पला, इसीलिए होश सभालते ही खूंटे तोड़ने लगा। दक्षिण कहो तो उत्तर जाएगा, पूर्व कहो तो पश्चिम का रुख करेगा।"

बीजी शिकायत करती। सुरेश और अड़ जाता। तब बाऊ जी उसकी मदद के लिए आ जाते, "बच्चा बड़ा हो रहा है, तू इसके साथ चिकचिक मत किया कर। ऐसे लड़का हाथ से निकल जाएगा।"

हाथ से तो सुरेश को निकलना ही था।

छोटेपन में ही बाऊ जी को पीते-पिलाते देख लुके-छिपे दो घूट भरने की आदत उसे लग ही गई थी। बड़े होते-होते यार-दोस्त भी मिल गए, जिन्होंने दोस्ती के तकाजे को नजर में रखकर शराब की मादकता के साथ उसे औरत के जिस्म की उत्तेजना का आस्वाद भी कराया। कच्ची उम्र से ही जिन्दगी के कई-कई स्वादों को महसूसता वह कुछ स्वादों का गुलाम हो गया। ज्यों-ज्यों घर के लोग उसे टोकते गए, एक अजीब-सी ज़िद ने उसे अपनी गिरफ्त में जकड़ लिया। बीजी के रहते ही वह लड़कियों को घर में बुलाता।

बीजी सुरेश की आदतों से दुःखी थीं, इस कारण दोहरा प्यार छोटे पर उंडेल देती। विकी मां की गोद में सिर डालकर

स्कूल-कालेजों के सच्चे-झूठे किस्से सुनाता, तो बीजी चहक
उठतीं। विकी के बालों में अंगुलियां फसाकर लाड़ से पूछतीं
"तू तो प्रोफेसर की इज्जत करता है न? लड़कियों से छेड़
खानी तो नहीं करता?"

सुरेश मा-बेटे के इस संवाद से चिढ़ उठता। भीतर ईर्ष्या
की आग जलने लगती। इस भोंदूमल को कितना प्यार मिला है
सब लोगों का।

प्रकट में वह भाई को डांटता, "ए, विकी! हुकुम की
तिकी। औरतों के साथ रहकर तू औरत न भी बने; पर इतना
कह देता हूं कि यही हाल रहा, तो मर्द बच्चा बनने की उम्मीद
छोड़।"

बीजी के बाद बाऊ जी मूकदर्शक बनकर सुरेश की आवारा-
गर्दियां देखते रहे। घर-भर में उसके प्रति उपेक्षा बरती गई।
तो सुरेश हीन भावना का शिकार हो गया। उस हीनता-बोध
को भुलाने के लिए वह घर से बाहर अपनी धाक जमाने के
लिए नित नये करतब करने लगा। दोस्तों के बीच उसके ऊट-
पटांग, वाहियात मजाकों पर भी कहकहे लगते। यारों की
उत्सुक नजरें उसे महफिलों में खोजती रहतीं तो उसका छिपा
अहम् सन्तुष्ट हो जाता।

विकी जब रात-रात-भर किताबों में सिर गड़ाए परीक्षा की
तैयारी करता रहता वह 'सब मरीन' या 'डाल बेबी' में तल्लीन
अगले दिन दोस्तों की महफिलों में सुनाने लायक कुछ चटपटा
मसाला ढूंढ़ता रहता। कुछ नई चौंकाने वाली घटनाओं की
तलाश में उसका समय बीतता गया। इस बेहूदा तलाश में वह
कितना कुछ गंवाता गया, इसके बारे में सुरेश उस वक्त सोच न
सका। नव देह भी उसकी आकर्षक थी, लम्बा गठा हुआ शरीर।
बाऊ जी के मोहक नाक-नक्श उसे मिले थे। उस पर गर्दन तक

लम्बे बाल, लेटेस्ट कट की तराशी हुई दाढ़ी। लड़कियों की लालसा-भरी नजरें उसे बांधा करतीं।

प्रोफेसर गुप्ता ने एक बार जब सुरेश की आवारागर्दी के बारे में बाऊ जी को इत्तला दी, तो बाऊ जी ने अंतिम बार बेटे को समझाया, "एक उम्र होती है पढ़ने-लिखने की भी सुरेश! पढ़-लिखकर वहीं हिल्ले में लग जाओ, तो जो जी में आए, करना।"

"पढ़ तो रहा हूं बाऊ जी! प्रोफेसर लोग पढ़ाते ही ऐसे हैं कि भेजे में कुछ घुसता नहीं। लड़के कहां तक सिर मारें किताबों से?"

बाऊ जी ने बेटे की उद्दंडता को नजर अंदाज करते स्वर को कोमल बनाए रखा, "बेटे! और भी लड़के हैं कालेज में। वे पास होते हैं। उनकी शिकायतें क्यों नहीं आतीं? आखिर उन्हें भी तो वही प्रोफेसर पढ़ाते हैं?"

सुरेश प्रोफेसर गुप्ता के लिए ऊलजलूल बकने लगा, तो बाऊ जी का धैर्य जवाब दे गया, "प्रोफेसरों को दोष मत दो। तीन साल से इण्टर में बैठे हो। आगे न पढ़ने की जैसे कसम खाई हुई है। तुम्हारे साथी तो ग्रेजुएशन भी कर चुके। तुम्हें उनके साथ उठने-बैठने शर्म भी नहीं आती!"

सुरेश बाऊ जी की दलीलों से प्रभावित न हुआ, उलटे गुप्ता जी से खार खा बैठा, "साला! शिकायत करता है। मैं कोई बच्चा हूं, जो बाऊ जी मुझे डाट-डपटकर पढ़ने को मजबूर करेंगे? जो जी में आएगा, करूंगा। तेरे बाप का क्या जाता है?"

गुप्ता जी ने डाटा। कालेज का अनुशासन भंग करने के आरोप में प्रिंसिपल से शिकायत की। प्रिंसिपल ने कालेज से निकलने का नोटिस दिया, तो दूसरे दिन ही सुरेश अपने दो

लंगोटिया यारों और एक अदद रामपुरी चाकू लेकर उसके घ
पर धावा बोल गया।

प्रोफेसर के साथ झड़प में सुरेश ने चाकू चलाया। जिससे गुप्ता जी की बाह लहूलुहान हो गई। उस दिन प्रतापसिंह के मकान में तमाम मोहल्ले वालों की थू-थू के बीच पुलिस हथकड़िया लेकर घुस गई थी और उसी दिन बाऊ जी के धैर्य की सभी सीमाएं अर्राकर ढह गई। बाऊ जी पर न जाने कौन-सा भूत सवार हो गया था। बाहर का दरवाजा दिखाकर उन्होंने बेटे को घर से निकलने का आदेश दिया, "जा, चला जा इसी वक्त! दुबारा घर में कदम न रखना। मैं समझूंगा, मेरा एक ही बेटा है।"

बीजी आंसू बहाती बीच-बचाव करती रहीं, "ऐसी कुबात मुंह से मत निकालो।"

"कुबात नहीं, सही बात बोल रहा हूं। मेरे नाम पर दुनिया भर की कीचड़ उछालने वाला यह नामुराद मेरी औलाद नहीं कहला सकता।"

अपने रसूख के कारण पुलिस वालों को उन्होंने बड़ी कुशलता से घूस देकर मामला रफा-दफा करवाया; पर बेटे को वे माफ न कर सके। उस दिन होश संभालने के बाद पहली बार मुकेश को बाऊ जी के हाथ से डंडे पड़े थे। पीठ पर बेशुमार लाल धारियां उभर आई थीं।

मुकेश भी चुपचाप मार खाकर शर्मिन्दा होने वाला न था। उसने अलमारी से भरी बंदूक निकालकर निशाना साधना चाहा। बाऊ जी जब तक स्थिति समझ पाते, बिजली से झपटकर भाई के हाथ से बंदूक छीन ली थी। बीजी यह कांड देखकर कांप उठीं। बाप-बेटे मरने-मारने पर उतर आए हैं, यह जानकर उन्हें गहरी चोट लगी। वे चीख मारकर वहीं गिर पड़ी थीं।

उसी दिन बीजी-बाऊ जी दोनों ने अपने घर-संसार की नींव हिलते देखी थी। बड़ी शिद्दत के साथ उन्होंने महसूस किया था कि दिन-ब-दिन एक वहशियाना-सा अजनबीपन घर के लोगों को अपने खूंखार बधनखों से खींचता जा रहा है। एक-दूसरे के सामने पड़ते ही खोटों-खरोंचों के घाव हरे होकर पीड़ा देने लगते।

बाऊ जी का सारा रवैया उसी दिन से बदल गया। बेटे के प्रति सारी आशाएं उन्होंने उसी दिन होम कर दीं। रात घिरे सुरेश घर लौटता, नशे में धुत। बीजी थाली में खाना ढककर रख देतीं। सुरेश कभी खाता, कभी बाहर से ही कुछ खा-पीकर लौटता और दोपहर चढ़ने तक ऊंघता रहता। बीजी कुछ दिन आंसू-भरी आंखों और मीठे बोलों से सिखाती-समझाती रहीं; पर बेटे के बन्द कानों में आवाज न पहुंची, तो थककर बीजी भी खामोश हो गईं।

बाऊ जी ने सुरेश के लिए चौका रखकर बैठने की सख्त मनाही की थी। चोरों की तरह घर में घुसकर वह रसोई-घर में जाता, तो बीजी बिल्ली के पांवों चारपाई से उठतीं। कहीं हलकी-सी सरसराहट से बाऊ जी की नींद न टूटे और घर में बवाल खड़ा हो जाए, पर बाऊ जी सोये कहां होते! पत्नी को उठते देख वे ऊंचे स्वर से डांटते, ताकि बाहर खड़ा बेटा भी उनकी आवाज सुन सके, "चुपचाप पड़ी रहो देवी! कहीं जाने की जरूरत नहीं। आधी रात बेटा घर आया है और तू उसे थाली परोसने के लिए भागी जा रही है? तू उसकी मां है या महाराजिन? बस कह देना अपने लड़के से, यह घर है, होटल नहीं। घर में रहना हो, तो घर के तौर-तरीके सीख ले।"

बाऊ जी ने सुरेश का जेब खर्च भी बन्द कर दिया। लड़कियां और बिगड़े-दिल दोस्त तंगदस्ती में कब तक साथ

कुछ दिन सहकर धीरे-धीरे भुला देगा।

सुरेश ने भाई को पत्र लिखा। पत्र में अपना निर्णय
दिया। ऐसा निर्णय, जो लिजलिजे मन से नहीं लिया गया
जिसमें कटती हुई जमीन का दर्द बहादुरी से झेलने का दम
ठीक एक समर्पित सिपाही का-सा ठोस, बेलौस निर्णय !

आठ

"सब कुछ खत्म होने के बाद गड़े मुर्दे उखाड़ने के लिए मत बुलाओ विकी। संस्कारों में कभी मेरा विश्वास नहीं रहा। तुम अच्छे बेटे की तरह जिये, अच्छे बेटे की तरह बाऊ जी की अंतिम इच्छाएं भी पूरी करोगे, मुझे पूरा भरोसा है। अब मेरे वहां पहुंचने में देर हो गई है। वहां आने का अब कोई अर्थ भी नहीं। नहीं, अब मैं कभी नहीं आऊंगा।"

विकी पत्र हाथ में लिए देर तक सोचता रहा। अर्थ तो शायद कोई नहीं था, या था भी तो इतना कमजोर और तर्कहीन कि विकी उस आधार पर न खुद को, और न भाई को उस वीरान-मनहूस लगते घर से जोड़ सकता था। बाह्य कड़ियों के टूटने के अलावा भीतर के सवल भी टूट गए थे। विकी ने न खुद को और न दूसरों को ही भुलावे में रखा।

बीजी के जाते ही उसे टूटन का पहला आभास मिला था। बड़ी तीव्रता से कुरेदता हुआ एहसास, कि कुछ खो गया है। केवल मां की जगह ही खाली नहीं हुई, घर की आत्मा भी घर छोड़कर चली गई है। अपनी तरफ से तो बीजी ने बाऊ जी को तमाम जकड़नों से मुक्त कर दिया था; पर बाऊ जी उनके

झांक रही है। आंखों के नीचे स्याह गड्ढों में उम्र को रेखांकित करती असंख्य लकीरें रातों-रात गहरा आई हैं। विकी अपराध-बोध से धंसने लगता है। मीना मौसी को समझने की उसने कोशिश ही कब की? कछुवे की तरह अपनी ही खोल में सिमटा वह मीना मौसी के अंतर्मन में न झांक सका। जिस दिन बाऊ जी इन्हें घर ले आए, उस दिन विकी का होस्टल में जाने का विचार एक जिद बन गया था; नहीं, वह नहीं रहेगा घर में।

मीना मौसी बैठक के दरवाजे पर खड़ी चुन्नी के छोर को अंगुलियों पर लपेटती-खोलती निःशब्द खड़ी रह गई थी, 'बेटा' कहकर विकी को संबोधित न कर सकी।

विकी आज सोचता कि मीना मौसी शायद कोशिश करने पर भी तब वह सब नहीं कह पाती। वह विवाह की वेदियां भले ही चढ़ चुकी हो, बंधु-बांधवों, नाते-रिश्तों के दायित्वों को ओढ़ती-निभाती गृहस्थिन का अनुभव उन्हें कहां था? मातृत्व की अनुभूति से रिक्त इस नारी में बहुत अधिक समर्पण और कहीं-कहीं उम्र का कच्चापन झलकता था। मीना मौसी शांत-सम्भ्रांत होकर भी भीड़ में खोई हुई नजर आती थी।

आज विकी उनके मुख का उदास भाव याद कर आहत हो जाता है। भीतर कुछ मथता है। बीच के दो वर्षों ने विकी को वृहत्तर परिवेश के खट्टे-मीठे अनुभवों से जोड़कर काफी कुछ बदल दिया है।

पर छोड़कर कुछ महीने वह होस्टल में रहा था। एम॰ एस-सी॰ की परीक्षा के बाद कुछ दिन बुआ के घर भी रहा; पर अपने घर न लौटा।

वहीं अखबारों के विज्ञापनों में सिर गड़ाए वह किसी छोटी-मोटी नौकरी की तलाश करता रहा। वह जल्द-से-जल्द शहर

छोड़कर जाना चाहता था। आने-जानेवाली बहुओं के साथ गुरों बेचनेवाले ने उसका बड़ा रहना दूभर कर दिया था।

इसी सहूलियत के वेतन पर उसने दिल्ली जाना तय कर लिया था। इसी के बारे पर वह बाऊ जी के पास गया, सूचना-भर देने के लिए। बाऊ जी ने सुना तो समझाने की गरज से कहा, "इस थोड़े-से वेतन पर कहाँ जाओगे दिल्ली? इसमें तो दो कमरों का किराया भी नहीं निकलेगा। तुम चाहो तो इतना तुम्हें घर बैठकर भी दिया सकता हूं।"

"मैं कहीं दूर जाना चाहता हूं, बाऊ जी!" विकी ने एक बार फिर अपना फैसला दोहराया।

बाऊ जी ने विकी की आंखों में घर के प्रति असीम विरक्ति की झलक देख लीं और आहत होकर चुप रहे। एक गम्भीर-सा हुंकार भरकर घर से बाहर निकल गए। उस वक्त विकी बाऊ जी का चेहरा देखने की हिम्मत न कर सका। लाख विरक्त होने के बावजूद वह बाऊ जी के अन्तस् में उठते द्वंद्व को चीन्ह सकता था।

बाऊ जी जान गए थे कि उनका बेटा अब वापस घर नहीं लौटेगा। लौटेगा भी तो महज कुछ औपचारिकताएं निभाने के लिए। घर नाम से जुडी मोह की कड़ी उसने एक झटके से ही तोड़ दी थी। उसी झटके से बाऊ जी का तैयार किया हुआ डिल्होल ढह गया था। पूरी तरह खंड-खंड हो गया था।

विकी ने सुरेश से विदा ली, तो वह दांत निपोरकर हंस पड़ा था, "जा, यार! मौज कर। दिल्ली तो रंगीन शहर है।"

दिल्ली की रंगीनियां देखने का समय विकी को नहीं मिला, [illegible]प्राइवेट कालेज में लेक्चरर का काम था। कालेज के झक्की [illegible] उसी पद पर नियुक्त चार अध्यापकों [illegible] नोटिस दिए थे। विकी को साथ के

इच्छाओं के खतरे की लाल झंडी दिखाई; पर उसने गौर नहीं किया। सुरक्षा, सम्मान, अधिकार जैसे बड़े शब्द उसे तब बचपन लगे थे। दरअसल उसे तब एक काम की जरूरत थी, छोटा-बड़ा, स्थायी-अस्थायी कोई भी काम। वह एक अलग माहौल में अपनी नियति खुद बनाना चाहता था।

घर से पलायन कर महानगर में विकी बेहद अकेलापन महसूस करता रहा। घर के संबंध कितने भी सकलीफदायी क्यों न रहे हों, वहां के माहौल में एक जानी-पहचानी गन्ध थी। पिता और भाई ही नहीं ठठरी का मकान, तवी से आती ठंडी खुश-नुमा बयार, सुबह-सुबह दादी के साथ पीरखो जाती तनु। सभी कुछ तो उसके साथ जुड़ा था, आत्मीय था, उससे कटकर उसे निष्कासित कर गया था। उसपर तकलीफ़ यह थी कि यह निष्कासन विकी ने खुद ही चुन लिया था।

उन दिनों, रविवार की तपती दुपहरी में टीन की छतवाली बरसाती के कमरे में बेचैनी से करवटें बदलते कभी उसकी आंख लगती, तो सपने में बीजी झालरदार पंखी हाथ में लिए उसके सिरहाने खड़ी हो जाती। गुमसुम, डबडबाई आंखों से उसे देखती रहती। होंठ थरथराकर बुदबुदाते, "घर तो तुम्हारा ही है अच्छा या बुरा।"

विकी चौंककर उठ बैठता। जिस्म पर धार बनकर बहता पसीना और मन में नामालूम-सी कसक लिए वह खिड़की की चौखट से खड़ा हो जाता। भीतर सिर उठाती स्मृतियों से जुड़े प्रश्नों से बचने की कोशिश करता। बाहर लम्बे-ऊंचे मकान कतार में खड़े, धूप में झुलस रहे होते। उनपर फैला गर्द-भरा आकाश उसे और भी उदास कर देता। शहर उसे किसी भी तरह बांध न पा रहा था। वह किसी भी छत, किसी भी खिड़की पर नजरें ठहरा न पाता। उस शहर में विकी विरान्त

हमपेशाओं ने खतरे की लाल झंडी दिखाई; पर उसने गौर नहीं किया। सुरक्षा, सम्मान, अधिकार जैसे बड़े शब्द उसे तब फालतू लगे थे। दरअसल उसे तब तक काम की जरूरत थी, छोटा-बड़ा, स्थायी-अस्थायी कोई भी काम। वह एक अलग माहौल में अपनी नियति खुद बनाना चाहता था।

घर से पलायन कर महानगर में विकी बेहद अकेलापन महसूस करता रहा। घर के संबंध कितने भी त्रासदायी क्यों न रहे हों, वहां के माहौल में एक जानी-पहचानी गन्ध थी। पिता और भाई ही नहीं, इक्की का मकान, तवी से आती ठंडी खुशनुमा हवाएं, सुबह-सुबह दादी के साथ घीरखो जाती तनु। सभी कुछ जो उसके साथ जुड़ा था, आत्मीय था, उससे कटकर उसे निष्कासित कर गया था। उसपर तकलीफ यह थी कि यह निष्कासन विकी ने खुद ही चुन लिया था।

उन दिनों, रविवार की तपती दुपहरी में टीन की छतवाली बरसाती के कमरे में बेचैनी से करवटें बदलते कभी उसकी आंख लगती, तो सपने में बीजी झालरदार पंखी हाथ में लिए उसके सिरहाने खड़ी हो जाती। गुमसुम, डबडबाई आंखों से उसे देखती रहती। होंठ थरथराकर बुदबुदाते, "घर तो तुम्हारा ही है, अच्छा या बुरा।"

विकी चौंककर उठ बैठता। जिस्म पर धार बनकर बहता पसीना और मन में नामालूम-सी कसक लिए वह खिड़की की चौखट में खड़ा हो जाता। भीतर सिर उठाती स्मृतियों से जुड़े प्रश्नों से बचने की कोशिश करता। बाहर लम्बे-ऊंचे मकान कतार में खड़े, धूप में झुलस रहे होते। उनपर फैला गर्द-भरा आकाश उसे और भी उदास कर देता। शहर उसे किसी भी तरह बांध न पा रहा था। वह किसी भी छत, किसी भी खिड़की पर नजरें ठहरा न पाता। उस शहर में विकी नितान्त

दिया। शंकाओं के सांप डसने लगे।

निश्छल आंखों से तनु ने उसे देखा था, मुसकराकर; पर विकी की आंखों में आग की लपटें लहकने लगी थीं। तनु की मासूमियत को शंका से घूरता वह फट पड़ा था, "क्यों आई हो?"

"बीजी ने बुलाया है।" तनु विकी की हिकारत-भरी नजरों से सहम गई थी।

"बीजी घर में नहीं है। सुरेश ऊपर है, चली जाओ।"

तनु की आंखों में खौफ की परछाइयां कांपने लगी थीं। लरजते होंठों से जब उसने निरपराध होने का जिक्र किया, तो विकी कुछ नर्म पड़ गया था, "जा अपने घर। इधर मत आना फिर कभी। कोई भी बुलाए, समझी।"

नाखून से धरती कुरेदती तनु की आंखों से दो गर्म बूंदें ढुलक पड़ी थीं। मुंह में चुन्नी का छोर दबाए वह उलटे पांव घर लौट गई थी।

सुरेश ने उस दिन भाई को खूब कसकर डांटा था। शिकार हाथ से छूटने का आक्रोश उसे बावला बना गया था।

"वापस क्यों भेज दिया?" तल्ख अन्दाज में उसने छत वाले कमरे से आवाज लगाई थी। विकी ने नजरें झुकाए ही उत्तर दिया था, "वह बीजी के पास आई थी। बीजी घर में नहीं हैं।"

सुरेश तब सीढ़ियां उतरकर विकी के पास खड़ा हो गया था, आपे से बाहर।

"तू बीच में टांग अड़ाना कब से सीख गया है गधे!"

यह पहला और आखिरी विशेषण था, घृणा से लबालब

और न जी लेने ! इतनी जल्दी सब कुछ खत्म न हो जाने! बाऊ जी ने बची-खुची आशाएं उसी पर केन्द्रित की थीं। उनकी तामीरों को आखिरी चोट देकर ढहाने वाला वही तो था। बाऊ जी के पास रहकर वह उनकी अकेली जिन्दगी में हरीभरी रह सकता था। जो काम मीना मौसी लाख समर्पण व सेवाओं के बाद भी न कर सकीं, वह काम रिक्की बाऊ जी की टूटन का राजदार बनकर आसानी से कर सकता था।

नदी की तरफ से पहचानी-सी गंध लिए हवा का झोंका आया और खाली कमरों से टकराकर लौट गया। चीड़ के घने शाखों में उदास मरमर स्वर गूंज उठा। अमावस के गहरे अंधेरे में नदी की क्षीण जलधारा का स्वर भी दूर से रोता हुआ मालूम पड़ा।

मीना मौसी ने कहा था, 'अंतिम दिनों बाऊ जी छत पर लेटे-लेटे रात-रात भर आकाश निहारा करते। सभी अपनों को बार-बार याद करते रहते। नींद जैसे कोसों दूर भाग गई थी।

रिक्की भी तो महानगर में अकेली ज़िन्दगी जीता रात-भर करवटें बदलता रहता था। कभी-कभी पंकज रैना और फिर मित्र उसके कमरे पर आ धमकते। उनके पास बच्चों और बहुओं के अलावा विषय बहुत। राजनीति से लेकर प्यार-मुहब्बत तक। कुछ देर रिक्की अपने आप के बारे में सोचना भूल जाता; पर उनके जाने के बाद फिर सोच की उन्हीं अंधेरी गुफाओं में भटकने लगता।

भरा हुआ, जो सुरेश ने विकी के लिए इस्तेमाल किया था। साथ में यह भी कहा था कि आगे से विकी को ध्यान रहे कि सुरेश निजी मामलों में किसी की दखलअंदाजी बर्दाश्त नहीं कर सकता।

विकी भी तब उबल पड़ा था, "यह आपका मामला नहीं है। तनु यहां नहीं आएगी। मैंने उसे मना कर दिया है।"

सुरेश ने गौर से भाई को देखा और अमरीकी अंदाज में कंधे उचका लिए थे, "ओ, तो यह बात है।" एक ठहाका लगाकर उसने धुएं-भरे माहौल को साफ कर दिया था, "अरे यार, पहले ही कहना था कि तुम दोनों में दोस्ती है। मुझे क्या मालूम ? सुरेश के लिए लड़कियों का कोई अकाल तो नहीं है।"

विकी तब तनु के लिए पागल था। गुप्ता साहब की यह मासूम-सी गहरी काली आंखों वाली लड़की उसे बेहद भा गई थी। कालेज जाते समय तनु उससे मिलती। बिना वायदे किए वे निश्चित समय, निश्चित मोड़ों पर मिलने। अनायास ही अंतरंगता के स्तर पर वे एक-दूसरे से जुड़ गए थे। तनु-विकी की घनिष्ठता सुरेश भांप गया था, तभी शायद किसी खाली वक्त में उसने उन दोनों को एक गोल घेरे में अंकित कर इस सम्बन्ध को अपनी स्वीकृति दी थी।

सुरेश के गर्द-भरे बन्द कमरे को देखकर विकी ने तीव्रता से महसूस किया कि उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया।

रात सभी नाते-रिश्तेदारों के चले जाने पर मीना मौसी दरी डालकर बाऊ जी के कमरे में जमीन पर लेट गईं। दायें हाथ का तकिया बनाकर उसने आंखें बन्द कर लीं, तो विकी उसकी

दुबली कलाइयों में पड़ी दो कांच की चूड़ियां देखता रहा। मीना मौसी ने बाऊ जी की मृत्यु पर चूड़ियां नहीं तोड़ीं। नाते-रिश्ते की महिलाओं ने भी इसे गलत न समझा। आखिर वह बाऊ जी की कौन-सी सात फेरे फिराकर लाई घर वाली थी? एक रखैल के लिए क्या नियम-धर्म?

रात को धरती पर दरी बिछाकर लेटना भी उनके लिए जरूरी न था। धरती पर गुड़ी-मुड़ी होकर लेटी मीना मौसी को देखकर विकी का जी भर आया। घर में पत्नी के नाम पर कभी भी लाल जोड़ा पहनकर और नाक में नथ डालकर कोई भी व्रत-अनुष्ठान करने की जो कभी हकदार न बनी, उसके लिए मृत्यु-सम्बन्धी शोक नियमों का पालन जरूरी क्यों? विकी ने आवाज देकर मौसी को जगाया, "मौसी! चारपाई पर लेटो। ऐसे तकलीफ होगी।"

मीना मौसी भावहीन आंखों से कुछ देर छत ताकती रहीं, फिर धीरे से उठकर चारपाई पर लेट गईं। कोई तर्क न किया, कोई सफाई नहीं दी। केवल एक उसांस दबाती विकी से बोली, "तू भी सो जा विकी! थक गया है। मैंने छत पर मंजा डाल दिया है।"

विकी चुपचाप छत पर चला आया। दिन-भर की मानसिक व शारीरिक थकान के बाद मंजे पर लेटकर भी वह सो न पाया। मीना मौसी ने बाऊ जी के कमरे में उनके अन्तिम आसन की जगह पर एक दिया बाल रखा था। मीना मौसी उस दिये को रात-भर अखण्ड रखेंगी और उनींदी आंखों में त्रासदायी स्मृतियां सजोये सूनी छत ताकती रहेंगी।

विकी अपने-आप को कटघरे में खड़ा करके स्वयं से जवाब-तलब करता रहा। एक प्रश्न बार-बार उसे सालता रहा—वह जो जिद में आकर घर से न चला जाता तो? बाऊ जी कुछ देर

और न जी लेने ! इतनी जल्दी सब कुछ खत्म न हो जाता। बाऊ जी ने बची-खुची आशाएं उसी पर केन्द्रित की थीं। उनकी सामीरो को आखिरी चोट देकर टहाने वाला वही तो था। बाऊ जी के पास रहकर वह उनकी अकेली जिंदगी में शरीक हो सकता था। जो काम मीना मौसी लाख समर्पण व सेवाओं के बाद भी न कर सकीं, वह काम विकी बाऊ जी को टूटन का राजदार बनकर आसानी से कर सकता था।

तवी की तरफ से पहचानी-सी गंध लिए हवा का झोंका आया और खाली कमरों से टकराकर लौट गया। चीपल की घनी शाखों में उदास मरमर स्वर गूंज उठा। अमावस के गहरे अंधेरे मे तवी की क्षीण जलधारा का स्वर भी दूर से रोता हुआ मालूम पड़ा।

मीना मौसी ने कहा था, "अंतिम दिनों बाऊ जी छत पर लेटे-लेटे, रात-रात-भर आकाश निहारा करते। सभी अपनों को बार-बार याद करते रहते। नींद जैसे कोसों दूर भाग गई थी।

विकी भी तो महानगर मे अकेली जिन्दगी जीता रात-रात-भर करवटें बदलता रहता था। कभी-कभी पंकज रैना और मिस सिंह उसके कमरे पर आ धमकते। उनके पास चर्चा और बहसों के काफी विषय रहते। राजनीति से लेकर पाप म्यूजिक तक। कुछ देर विकी अपने-आप के बारे में सोचना भूल जाता; पर उनके जाने के बाद, फिर सोच की उन्हीं अंधेरी गुफाओं में कैद होने लगता।

उसे मन-ही-मन घुलता देखकर पकज ने उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। मिस सिंह ने आत्मीयता दी। मिस सिंह तनु जैसी छुई-मुई न थी, बल्कि तेज-तर्रार, विदुषी महिला थी। पेशे से संगीत की अध्यापिका मिस सिंह को संगीत से साहित्य,

और साहित्य से राजनीति की ओर मुड़ना और चर्चा करना अच्छा लगता। मिस सिंह ने उसे अतीत के अंधेरे से बाहर खींच-कर, वर्तमान में जीना सिखलाया। विकी भी अनायास ही इस अनुभवी लड़की के साथ जुड़ गया, जिसके साथ जुड़ने की बात वह दो वर्ष पहले सोच भी न सकता था। विकी ने उसके अतीत में झाकने की हिमाकत न की। उसे वह अच्छी लगी, निष्कपट, निश्छल, बस।

नौ

मिस सिंह ने खुद ही अपने विगत की जानकारी विक को दी। बड़े औपचारिक ढंग से, वार्ता-प्रसंगों के बीच उसने कभी सीता-सावित्री घोषित करके अपने को लोहे की दीवार में सुरक्षित या कैद न रखा। वह जो भी थी खुली किताब — सो सामने थी। विकी को उसमें यह बात अच्छी लगी। पंकज उसे पसन्द था; पर नीता के नसीब! वह तो पहले ही फ़ैश हो चुके थे। उसने पंकज के सामने, बल्कि उसकी पत्नी के सामने ही हंसी-मजाक के बीच कह दिया।

यों विकी उन दिनों उन्मुक्त भी नहीं था। कोई वक़्त जिंदगी में ऐसा आता है, जब मन में सम्बन्धों के प्रति विरक्ति का भाव उग आता है। पुराने सम्बन्ध सालते हैं। आदमी जख्म बने अतीत के सम्बन्धों के खुरंड उधेड़ता रहता है और बार-बार लहूलुहान होता रहता है, उन जख्मों की पीड़ा झेलता हुआ। स्वपीडन का यह सुख विकी भी काफ़ी दिन भोगता रहा।

लड़कियों से उसे यों वितृष्णा हो आई थी। एक ओर तनु थी। मासूम, निरीह-सी लगने वाली लड़की, जिसे माता-पिता किसी भी राह चलते के गले बांध दें, तो भी शायद मुंह खोले—

कर प्रतिवाद न कर पाए, दूसरी तरफ मीता जैसी विवेकहीन लड़कियां थीं, जो सुरेश जैसे आवारागर्द की करतूतें जानते हुए भी, बहलाने, फुसलाने मे आकर घर-परिवार की मर्यादा से बाहर हो गई थीं। ऐसी लड़कियां जो कुछ भावुक क्षणो के लिए जिन्दगी के तमाम अनुशासन भूल जाए, उनसे विकी को सहानुभूति नहीं थी। विकी सोचता, यदि मीता सचमुच सुरेश से प्यार कर रही होती, तो क्या माता-पिता से अपनी इच्छा जाहिर न कर पाती ? हो सकता है वे क्रोध करते, नाराज होते, पर अन्ततः बेटी की इच्छा में ईमानदारी की झलक पाकर वे दोनो के विवाह के लिए राजी भी हो सकते थे। कम-से-कम मीता तो कोशिश करके उन्हें एक मौका दे देती। खासकर तब, जबकि उन दोनों की मंगनी उन्होंने खुद तय की थी। परिवारों का आपसी मेल-जोल भी पुराना था, लेकिन मीता मे न चरित्र की दृढ़ता थी और न खुद पर विश्वास ही।

परन्तु नीला सिंह उन लड़कियों से अलग थी। भिन्न और विशिष्ट। उम्र मे भी वह विकी के बराबर ही थी। वह एक विवेकशील सुलझी हुई लड़की थी। विकी को गहरे अवसाद से बाहर खींच लाना उसी के लिए सभव था।

बातें करने का उसे शौक था, पर वह खामोशी की ताकत भी जानती थी। कभी पकज के घर बैठे वे देर तक साफ्ट म्यूजिक सुना करते। बेगम अख्तर की गंभीर गूंजती आवाज सीधे दिल में उतर आती थी। जगजीत सिंह की गजलें भी विकी को अच्छी लगती थीं। पकज के पास उनके गीतों-गजलों के कैसेट थे। मीना कुमारी की दर्द-भरी आवाज मे गाई उसी की गजल —'टुकड़े-टुकड़े दिन हुआ, धज्जी-धज्जी रात हुई, जिसकी जितनी झोली थी, उसको उतनी सौगात मिली'। वह बार-बार सुनता। सगीत के झीने आवरण में वह अपनी तीखी स्मृतियां

को भूल जाता। उठने-गिरने स्वर उसे विचित्र उदारता से भर देते।

नीला विकी के साथ किसी अच्छे रेस्तरां में बैठकर काफी पीना, कभी-कभी डिनर लेना पसन्द करती थी। नीम धुंधली सुकूनदेह रोशनियां, संगीत की मध्यम ध्वनियों पर थिरकते जोड़े। ऐसे में वे लोग नाच-गानों में शामिल न भी होते; पर पास बैठकर एक-दूसरे को अपने करीब महसूस करते।

यों विकी की जेब महंगे रेस्तराओं में गारलिक फिश और मटन कबाब खाने की इजाजत नहीं देती थी, लेकिन मिस सिंह के पिता का शहर में अच्छा-खासा व्यवसाय था और वह अपने पिता की अकेली संतान थी। लेक्चररशिप उसने जरूरत से ज्यादा शौक के लिए की थी। उसकी कुछ साथियों में घरेलू परेशानियों में फंसी मध्यवर्गीय महिला लेक्चरार कहती भी थीं कि हीरों-मोतियों को लिए नौकरी करने वाली महिलाएं कालेज अपना टाइम पास करने और डायमंड सेट्स दिखाने आती हैं, उन्हें पढ़ाई-लिखाई से क्या लेना-देना?

हो सकता है, इस वाक्य में महिला वर्ग की ईर्ष्या और हीन भावना रहती हो; पर सच तो नीला सिंह भी मानती थी, "हां, भई, मैं जरूरत के लिए तो नौकरी नहीं करती। यह सच है।" लेकिन नीला सिंह से विद्यार्थी प्रसन्न थे। प्रसन्न और संतुष्ट। इसी से कालेज के प्रिंसिपल भी संतुष्ट थे। उनके विद्यार्थियों का औसत परीक्षाफल बाकी मेहनत-मशक्कत करके पढ़ाने वाली लेक्चररों से बेहतर रहता था।

गर्ज़ यह कि नीला सिंह को पैसों की कोई दिक्कत न थी, फिर भी मध्यवर्गीय मानसिकता के तहत विकी के मन में ग्रंथियां थीं और इसीलिए मिस सिंह का बिल चुकाना उसे पसंद नहीं था। मिस सिंह उसकी घरेलू स्थितियों और उसके घर से

ठकर आने की बात जान गई थी, इसलिए वह बड़ी समझदारी से उसे अहसास कराती कि पैसे से ज्यादा वह विकी का साथ चाहती है। फिर उसको पहले से बनी हुई कुछ बेढब आदतें हैं, जिनमें किसी-किसी शनि या रवि को अच्छे रेस्तरां में डिनर, लंच लेना भी शामिल है। विकी साथ न भी हो, तो भी वह किसी दोस्त को लेकर चली जाती। जाहिर है, पैसा वह अपने शौक के लिए खर्च करती है, विकी के लिए नहीं।

"लेकिन बार-बार आपका बिल चुकाना मुझे मंजूर नहीं।" विकी के भीतर पुरुष का अहम् बोलने लगा था। एक बार अशोका में नीला के बिल चुकाने पर उसने विरोध किया था।

"पहले यह आप-आप कहना बन्द करो भई! आसपास खड़े ये बैरे समझ रहे हैं किसी मेहमान की खातिरदारी हो रही है। या हो सकता है, वे हमें नोक-झोंक करते देख पति-पत्नी ही समझ बैठें, फिर आज निमंत्रण तो मेरा है। जब तुम्हारी तरफ से होगा, तो तुम्हीं बिल चुकाना, बस!"

"लेकिन एटिकेट भी तो कोई चीज है? पुरुष साथ हो, तो स्त्री..."

"अरे छोड़ो भी यह स्त्री-पुरुष को खानों में बांटना। यहां तुम ऐसा कोई तीर तो नहीं मार रहे, जो मैं नहीं मार सकती, बल्कि तुमसे ज्यादा डटकर मैं खा रही हूं, फिर हम दोनों दोस्त हैं। साथ काम करते हैं। एक जैसा कमाते हैं। इसमें स्त्री-पुरुष का भेद-भाव कहां से आ गया?"

"फिर भी!"

"अच्छा, कह दिया न, अगला निमंत्रण तुम्हारी तरफ से, ठीक है न?"

"अच्छा!" विकी बड़ी सहजता से मिस सिंह की बात मान गया। दोस्ती के अनुबन्ध पर बड़ी तत्परता से हस्ताक्षर

हो गए।

पहले-पहले तो दोस्ती ही थी। दो साथ काम करने वालों की, एक तरह से सोचने वालों की, एक ही कालेज में पढ़ाने वालों की। उससे परे दोनों ने कुछ खास न सोचा था।

विकी ने तो बिलकुल भी नहीं। वह अपने में इतना उलझा हुआ था कि किसी नये सम्बन्ध के बारे में सोचना, उसके लिए उस वक्त मुश्किल था, लेकिन यह भी कितना बेतुका है कि सम्बन्धों की आत्मीयता और गहनता के कायम होने के बावजूद मनुष्य नये-नये सम्बन्ध जोड़ता है। पुराने सम्बन्ध मीठी-मीठी सी याद बनकर अतीत हो जाते हैं। आदमी प्रकट रूप न चाहते हुए भी, संवेदनाएं सदा खोजती किसी ऐसे से जुड़ना जिसे अपने अस्तित्व के करीब महसूस किया जा सके। जिसकी सांसों की गंध में अपनी सांसों की महक पाई जा सके। आश्चर्य ! दो व्यक्ति नितांत भिन्न होने पर भी किसी बिन्दु पर एक होकर ऐसे घुल जाते हैं, ज्यों नमक-पानी एक हो जाते हैं। चाहत का दुर्निवार आग्रह जिसे पाने की व्यग्रता भीतर-बाहर ललकता है और आदमी लाख चिन्ताओं, परेशानियों और व्यस्तताओं के बावजूद अपने लिए किसी के भीतर एक सुरक्षित कोना ढूंढ़ लेता है।

विकी के साथ भी ऐसा ही हुआ। प्रकट में चाहे वह कितना विरक्त हो ! वहां, भीतर सिर उठाती, किसी से जुड़ने की दुर्निवार इच्छा उसे नीला सिंह की ओर धकेलती गई। छुट्टी के दिन कभी कुतुबमीनार के पार्कों में कोई एकांत कोना खोजकर घंटों बैठा करते, कभी इंडिया गेट के घासीले मैदानों पर लेटे अपने-अपने अतीत की सीवन उधेड़ते रहते। शुरुआत भी नीला सिंह ने ही की।

बोट क्लब में एक छोटे-से बोट में बैठी वह पानी को

मे घोरनी, उम्र के कई साल पीछे लौट आई और अपने पहले प्यार की बचकानी हरकतो का जिक्र करने लगी। उस दिन वे सुबह-सुबह बोटिंग करने के इरादे से इंडिया गेट की तरफ निकले थे।

दिन सुहाना था। नीले आसमान को हलकी बदलियो ने घेर रखा था। ठंडी हवाओ के बीच वर्षा की नन्ही फुहारें यहाँ-वहाँ बरस रही थीं। सावन की शुरुआत के दिन थे वे। मौसम ज्यो घरो मे बाहर निकलने को पुकार रहा हो। नीला ने विकी से उसी दिन कहा था, "विकी ! मालूम है आज के दिन क्या करना चाहिए ?"

"क्या ?"

विकी तो सचमुच जानता न था कि आकाश मे एकाएक कुछ बदलियो और कुछ फुहारें पड़ने से दिनचर्या मे अन्तर आना चाहिए। उसके लिए छुट्टी का दिन, हफ्ते-भर के लिए कुछ जरूरी खरीदारी करने का दिन था। हा किसी से मिलना-मिलाना हो, वह भी उसी दिन होता था।

नीला सिड हसी, "इतने अनाड़ी हो, जितना अपने को जताते हो ?"

"मै जानता नही।" विकी सचमुच बात का संदर्भ नही समझा। दरअसल वह उतने खुले माहौल मे पला-बढ़ा नहीं था, जितने मे मिस सिह, बल्कि भाई के खुले आचरण ने उस पर मनोवैज्ञानिक दबाव-सा डाल दिया था। वह सहज सबधो से भी इधर कतराने लगा था।

"सचमुच भोले हो।" नीला ने चप्पू से पानी में भंवर बनाते कुछ छीटे उसके ऊपर उछाल दिए थे, "अच्छा, विकी ! तुम सचमुच इतने भोले हो, जितना दिखते हो या मेरे सामने खुलना नहीं चाहते ?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं। मैं तो स्वभाव से ही ऐसा हूं। तुम तो दोस्त हो, तुम्हारे सामने क्या छिपाना ?"

विकी पानी में थिरकते बोट में धीरे-धीरे घुसने लगा था। नीना कुछ देर चुपचाप हवा-पानी की सरगोशियां सुनती रही।

अचानक उसने कहा, "मालूम है विकी ! तुम जैसे सीधे, भोले-भाले दोस्त को पाकर मुझे कितना अच्छा लग रहा है ? यों तो मैं बचपन से बड़ी नटखट थी। दोस्त भी एक-दो बनाए; पर जाने क्यों थोड़ी दूर जाकर ही मैं उन्हें 'बाई' कर आती थी। वे इतने पोजेसिव नेचर के थे कि बस पहली-दूसरी मुलाकात में ही बोर करने लगते थे। बड़ी बनावटी बातें होती थीं उनकी, 'मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता।' '...मैं तुम्हारे लिए कुछ भी कर सकता हूं। वायदा करो मेरे सिवा किसी और की नहीं होओगी, मरते दम तक वफादारी निभाऊंगा।' ऐसे-ऐसे ही घटिया फिल्मी संवाद। हां, एक मजेदार किस्सा सुनाती हूं तुम्हें। उम्र के सोलहवें-सत्रहवें साल में एक गोरा-चिट्टा, खूबसूरत-सा बना अट्ठारह-उन्नीस साल का लड़का मुझ पर रीझ गया। लड़का ट्विस्ट डांस में माहिर। छोटी उम्र में ही लड़कियों को रिझाने के नुस्खे जानता था। बिल्कुल फिल्मी हीरो बनता था नेक्स्ट डोर ! [illegible] का प्रशंसक, जैसा जाता, एकाध [illegible], एकाध इसी की बातें कहकर अपने इर्द-गिर्द किशोरियों का माहौल बनाता। कोई भी सोलह साला किशोरी उस पर जान छिड़क सकती थी। मुझमें तो ऐसी मोहित होने वाली कोई खास बात नहीं थी। बिल्कुल बेवकूफ-सी थी उन दिनों।"

नीना बात करते हुए रुकी। इसी से आंगन [illegible] के बीच [illegible] की [illegible] उठी। विकी देखता रहा, चुप-सा। उसके भीतर एक सी-सी [illegible] की आह उठी। नीना [illegible] जाने की [illegible] पंखुड़ियों को छूने की, जो

हलकी हंसी में लरज गई थीं। बिलकुल हवा के नन्हे झोंकों से हिलती गुलाब की पंखुड़ियों की तरह और नीला कह रही थी, उसमें मोहित होने वाली कोई बात नहीं थी।

"क्या देख रहे हो विकी ! कुछ सोचने लगे हो ?" नीला बोलते-बोलते रुक गई।

विकी चुप। क्या बोले ? वह सोचने लगा था।

"मैं बताऊं, क्या सोचने लगे ? यही न कि मैंने उस लड़के के साथ रोमांस किया होगा। लम्बी-लम्बी, फिल्मी गीतों से भरी चिट्ठियां लिखी होंगी। बहुत घूमी-फिरी होऊंगी। वगैरह-वगैरह।"

"तुम दोनों एक-दूसरे को चाहते हो ?" विकी अचानक पूछ बैठा।

"अरे कुछ खास नहीं। एकाध बार मैं उसके साथ रेस्तरां गई। हैमबरगर खाने की उसे लत थी। अपने घर में डांस पार्टी में उसने मुझे बुलाया। उफ, विकी ! वह इतना बेवकूफ था, क्या कहूं ? जहां भी कोई रंगीन तितली देखता, बस दिमाग खराब हो जाता। लगता उसके आगे-पीछे चक्कर मारने। एक बार मुझे कनाट प्लेस में मिल गया। आइसक्रीम खिलाने के लिए 'निरुला' ले जा रहा था कि रास्ते में कोई दोस्त मिल गई। बजाय इसके कि उसे भी साथ ले आता, मुझसे परिचित करवाता, वह बेवकूफ मुझे जल्दी में बाई करके, 'फिर कभी' कहकर उसके साथ चला गया। अपनी तो बड़ी बेइज्जती हुई। धत् तेरे की ! तेरे जैसे आवारा सैकपाट के साथ मैं रोमांस करूंगी ? इस मुगालते में न रह ! मैं भी चार बातें सुनाकर अलग हट गई।"

"बेचारे का दिल तोड़ दिया।" विकी नीला की बातें एन्जाय कर रहा था।

नहीं विकी अचानक उत्सुक क्यों हो उठा था ? नीला ने उसकी नजर अपने चेहरे पर टिकी पाई, पारदर्शी नजर। ज्यों उसके भीतर कुछ टटोल रही हो। महसूस किया कि उसकी आवाज में धीमा-सा कम्प है। पहली बार मिस सिंह का नाम लेकर उसने नीला को ज्यों अपनेपन से गले लगाया हो। नीला के हाथ पर उसकी पकड़ मजबूत हो गई थी। उसे लगा, वह हाथ न हटाएगी, तो विकी के हाथों में उसकी अंगुलियां पिस जाएंगी। वह उसकी तेज सांसों की उठान अपने करीब महसूस कर रही थी। बड़ा अप्रत्याशित-सा था विकी का उस दिन का व्यवहार।

"ऐ, हाथ तो छोड़ दो मेरा। यों बहुत नाजुक नहीं हूं, पर अभी बोट में बैठकर हैंड-पावर तो नहीं आजमाया जाएगा।"

विकी थोड़ा झेंप गया, "ओ, सारी ! दरअसल…।"

"नहीं, कोई सफाई नहीं चाहिए। तुमने मेरी बात का जवाब दिया है।" नीला ने उसके अधखुले होंठ उंगली के स्पर्श से बन्द कर दिए।

"मैंने तुमसे पूछा था। आज के इस सुहावने मौसम में क्या करना चाहिए ? तुमने जवाब दे दिया, बस !" नीला शरारत से बोली।

"निशान तो नहीं पड़े मेरी अंगुलियों के ? सख्त हाथ हैं मेरे।" विकी ने उन हाथों को सहलाया, इस बार बड़ी सहजता से। बारी-बारी से उन्हें होंठों से छुआया। एक अचानक उन्माद-सा उसके भीतर उबलने लगा था। इतना तेज प्रवाह ज्यों पहली बार खून में आ गया हो।

सच ही विकी को क्या हो गया, अचानक उसके हाथ के दबाव से नीला की हथेली में अंगूठी का निशान पड़ गया था। नर्म हथेली में अंगूठी का अक्स। नीला सिंह कितनी भी सुलझी हुई लड़की हो, उष्ण स्पर्श से सिहरना स्वाभाविक था। विकी,

और ये मोना कुछ किसी जैसे अपना लगता था। वह अ
भीतर इसके प्यार दुलार का अहसास, कोई भी नाम दो, उस
रिश्ते को पकड़ कर रखना चाहती थी। उस दिन तन-मन की सि
इसी दुनियादारी के बीच अद्भुत से मेरे-फिर, जिसकी बात में सो
की बातें शुरू हुईं। दो दूर कहीं एक-दूसरे की मोहब्बत
बरकरार हो गई। मुरझी हुई संवेदनाओं की बात उन्हें अ
साथ यहां ले आए, इसके पहले वे दोनों किनारे हो गये। आम
पास की बातों में उलझ बैठे उन्हें हवा से छूने लगे थे औ
उन्हें महसूस किया गया है कि मौसम का असर ठीक है; पर
यह एक सार्वजनिक स्थान है, जहां कुछ कायदे-कानूनों का
निर्वाह करना पड़ता है।

इस अकस्मात् संदेश के बाद कई दिन मीना दिखाई न दी।
कालेज में भी नजर न आई। किसी तरह पता न चल
सका। पंकज ने पूछा, तो पता चला छुट्टी पर है। मां को हार्ट
अटैक हो गया है। उसे मेडिकल में दाखिल कराया है।

"चलोगे ? मैं जा रहा हूं। चार बजे तक तो हो ही
आयोगे ?" पंकज ने पूछा।

मां के लिए मन में कोमल भाव होना या इत्तिफ़ा मेंट की
उस आत्मीय शाम के बाद कई दिन मीना को न देखने की
बेचैनी या शायद दोनों ऐसे कारण थे कि बिना कुछ ऐतराज़
बनावेश बन के लिए मुन्तज़ी कर पंकज के साथ मीना की मां
को देखने चला गया।

मीना की मां बिस्तर पर लेटी थी। ज्यादा बोलने-चालने
की उसे अभी भी इजाज़त न थी, गोकि हार्ट अटैक का ख़तरा
वह बर्दाश्त कर चुकी थी। मीना मां के पास बैठी, उसकी छोटी-
छोटी सुविधाओं पर लपक-लपककर उसके आसपास मंडराती,
बिल्कुल घरेलू लड़की लग रही थी। कभी सन्तरा छीलकर मां

मुंह में देती, कभी माथे पर उंगलियां फिराती, धीमे से करवट बदलवाती, चादर ठीक करती। उसके रूखे बाल माथे पर उतर आए थे। चिन्ता और रतजगे से मुंह जर्द लग रहा था। विकी और पंकज को देखकर नीला खुश हो गई। मुसकराकर उनका स्वागत किया और बैठने के लिए जगह दे दी।

"मां जी की तबीयत का सुनकर दुःख हुआ। क्या हुआ था अचानक? हमें बिलकुल खबर न दी।" विकी ने एक साथ अनेक प्रश्न कर डाले और साथ ही अपनी अतिरिक्त उत्सुकता पर कुछ झेंप-सा गया। झेंप इसलिए भी हुई कि पंकज उसके बात करने के दौरान अतिरिक्त उत्सुकता से उसे घूरने लगा था। ज्यों पूछ रहा हो, "क्यों यार! अचानक इतनी चिन्ता क्यों नीला की मां के लिए?"

"नहीं, अचानक नहीं। पहले भी एक अटैक हुआ है। पहला माइल्ड था। इस बार काफी परेशानी हुई। मैं कालेज के लिए तैयार हो रही थी कि देखा मम्मी को अचानक उल्टियां आ रही हैं। सामने जाकर पाया, वे एकदम पसीने से नहा उठी थीं और सीने पर हाथ रखकर दर्द की शिकायत कर रही थीं। मैं तो इतनी बदहवास हो गई कि किसी को बुला भी न सकी। ऊपर से मुसीबत यह कि घर में पापा भी नहीं। वे बिजनेस ट्रिप पर बंगलौर गए थे। छोकरे ने मुझसे ज्यादा हिम्मत दिखाई। मेरे तो हाथ-पांव फूल गए। गैरेज से गाड़ी निकालना भी मुश्किल हो गया।"

"यूं तो तुम बड़ी हिम्मतवाली हो नीला!" पंकज ने अपनेपन से कहा, "या यह सब हाथी के दांत ही हैं?"

"नहीं, सचमुच हिम्मतवाली ही हूं।" नीला आत्मस्वीकार के लहजे में बोली, "पर यह मम्मी का दूसरा अटैक था, इसलिए एकदम उम्मीद ही छोड़ बैठी। जब किसी बेहद अपने पर तक-

सोंफ आती है, जाने क्यों सारी हिम्मत जवाब दे जाती है ?" नीला थोड़ी शर्मिन्दा हुई, "मैं यूं भी मम्मी के लिए कुछ ज्यादा ही परेशान रहती हूं। आई एडमिट माई वीकनेस।"

'वीकनेस ? नहीं तो।" विकी नीला की बात सुधारता हुआ बोला, "मां के लिए हर किसी में थोड़ी-बहुत वीकनेस होती ही है। यह सम्बन्ध ही ऐसा है।"

नीला सिंह ने विकी को देखा। वह उसकी मां के बहुत पास चारपाई से टिककर खड़ा था, ज्यों हाथ से छूकर उसे सहलाना चाहता हो। नजरें उसके हल्दी पीले चेहरे से चिपक गई थीं। क्या देख रहा था वह ? क्या सोच रहा था विकी ? जरूर उस वक्त उसे बिस्तरे पर पड़ी बीजी याद आई होंगी। मौत और जिन्दगी के बीच रस्साकशी में झूलती बीजी।

"अब तो कुछ आराम है न मां जी !" विकी ने झुककर मम्मी के कान के पास आकर धीमे स्वर से पूछा। नीला की मां ने आंखें खोलीं। एकदम परिचित की तरह कौन उससे संबोधित हुआ ? उसने तो शायद पहली बार ही इस लड़के को देखा था, जिसकी आवाज में आत्मीयता की गंध थी।

"कुछ ठीक हूं बेटा ! थोड़ी कमजोरी लग रही है।"

विकी का परिचय पाने के लिए वह नीला की तरफ देखने लगी, "कौन है यह ? कभी देखा नहीं इसे। गैर होने पर भी इसकी आवाज में इतना अपनापन कैसे ?"

"मम्मी ! ये मेरे साथ कालेज में पढ़ाते हैं। हमारे सहयोगी हैं। विवेक भी नाम है। जम्मू से आए हैं।"

"बस विवेक काफी है। माँ मुझे घर में विकी बोलते हैं।" ... को अच्छा लगा। हाथ उठाकर उसने विकी की ... मामो कभी, तो विकी ही बुलाऊंगी।"

..., करुणा, इन भावभीने संवेदनाओं में सचमुच ...

जबर्दस्त छूत है, जिसे छुआ, उसमें कीटाणुओं का प्रवेश हो ही जाता है। विकी तो मां की ममता का प्यासा था ही। यों नितांत अजनबी शहर में पंकज और नीला की दोस्ती का सहारा पाकर दिन अच्छे गुजरने लगते थे; पर नीला की मां की ममता में फर्क था। उसमें बीजी के स्नेह का आभास था। विकी इस स्नेह के आगे बिना खिंचे रह भी कैसे सकता था ?

विकी नीला की मां के सहारे नीला के और करीब आ गया। छोटे-छोटे घरेलू नोक-झोकों में वह मम्मी का साथ देता। नीला अकेली पड़ जाती, चिढ़ती, खीझती आह्लाद से भर जाती, विकी के पास आती गई। कुछ ही दिनों में विकी सिंह परिवार के घर का सदस्य बन गया।

दस

दो-ढाई साल दिल्ली में रहकर वह घर की ओर से काफी कटा-सा रहा। बाऊ जी को देखने की इच्छा होती; पर हिम्मत न पड़ती। किस मुंह से जाए। मन में झिझक-सी होती। पंकज ने उसकी यह झिझक दूर कर दी थी, "जाओ यार ! कुछ दिन पिता जी के पास रहकर आओ। छुट्टियां भी हैं। वे कितने अकेले हैं, यह तो मैं भी महसूस कर सकता हूं। एक उम्र होती है भई, जब आदमी लाख वरागी होने पर भी बच्चों-वालों से कुछ उम्मीदें रखने लगता है।"

पंकज ने उसे बड़े भाई-सा प्यार दिया, उदासी की खोह से बाहर निकाला, "दोस्त ! कभी अपने को भूलकर खुली आंखों से दुनिया देखो। तुम-हम लाखों लोगों से ज्यादा खुशनसीब हैं। कम-से-कम हम जी तो रहे हैं। जिन्दगी अपने-आप में क्या कम खूबसूरत है ?"

जिस शाम विवेक अटैची में बाऊ जी के लिए खरीदी कुछ कमीजें और मीना मौसी के लिए साड़ी-ब्लाउज रख रहा था, मकान मालिक धड़धड़ाता हुआ जीना चढ़ा, "विवेक बाबू ! ... आया है।"

मीना मौसी की आवाज में कंपन था, "बाऊ जी बहुत बीमार हैं। तुम्हें देखना चाहते हैं।"

किसी अप्रिय घटना की आशंका ने उसी वक्त दहला दिया था।

"मुझे पहले क्यों न बुलाया मौसी !" बाऊ जी के क्षत-विक्षत शरीर को देखकर विकी अपने को संभाल न पाया।

मीना मौसी आंखों से करुणा बरसाती पीठ पर हाथ फेरती रही। बाऊ जी ने आंख के इशारे से झुकने को कहा और विकी के चेहरे को अपने होंठों से दुलार किया। उस वक्त बाऊ जी की आंखों में जल छलक आया था।

"वहां खुश तो है न विकी !" कमजोर आवाज में एक प्रश्न उनके भीतर से उग आया था।

विकी असुवाती आंखों से देखता रहा, सफेद पट्टियों से बंधा सिर, जिसपर जगह-जगह खून के लाल धब्बे उभर आए थे। गालों की उभरी हुई हड्डियां। उनका मर्म कोई बेदर्दी से छील रहा था। शब्द कानों को चीर रहे थे, "खुश तो है न वहां ?"

घर से दूर वह खुशी ढूंढने गया था या अपने बिखरे अस्तित्व को समेटने ? कितना सहेजा उसने अपने-आप को ? बार-बार स्मृतियों की आरियों से चिरता रहा वह। बार-बार एक तीखा दर्द सालता रहा, बाऊ जी की सही तसवीर न खींच पाने का दर्द। पर वह बड़ा हो गया था। छोटी-छोटी बचकानी बातें कहकर मन का मोह जता न सकता था। इतना भी न कह सका, "बाऊ जी ! तुम्हें अकेलेपन की यातना देकर हम किसी ऋण

की थी ?

"सीखेगा, जरूर सीखेगा। ठोकरें खाएगा तो अक्ल आएगी।"

सुरेश ने लिखा है, "उसे कुछ नहीं चाहिए। वह उस जगह पर है, जहां पैसा इकट्ठा करने का कोई महत्त्व नहीं। अभी है अभी नहीं।" उसकी इच्छा भी नहीं है। शादी करके घर बसाने का न उसे शऊर है और न ही अब वैसी कोई लालसा मन में उगती है। बाऊ जी उसे आर्मी आफिसर बनाना चाहते थे। वह आफिसर नहीं; पर जवान तो बन गया। बाऊ जी बेटे के लिए मन में कोई मिसाल न रखें ! विकी जैसा निर्णय लेना चाहे, वे, उसे खुशी होगी।

यह पत्र मीना मौसी को कुछ ही दिन पहले मिला है और निर्णय विकी ने ले लिया है। मीना मौसी ने इस बार भी विरोध नहीं किया। भीतर की उथल-पुथल के बावजूद वह ऊपर से शांत हैं। निर्लिप्त भाव से वह इक्की उतरती बूढ़ी भक्तिनों को फूलों की टोकरी थामे, भजन गुनगुनाती सुनती है। मीना मौसी यहां रही, तो वह भी भजन-पूजन में मन रमाना सीख लें। शायद अभी तक वैसा कोई विश्वास वह अपने भीतर जगा नहीं पाई हैं; परंतु सब तरफ से कटने के बाद सहारे के लिए अध्यात्म ही एकमात्र संबल बच जाता है न ?

विकी मुंडेर पर झुककर नीचे गली में झांकता है, रेले-के-रेले पुरुष, स्त्रियां। इन स्त्रियों में तनु भी होगी क्या ? नीली चुन्नी से झांकता मासूम गुलाबी चेहरा, बार-बार नजरें उठाकर किसी को खोजती हुई बेताब चंचल तनु, पर कहां ? मीना मौसी ने कहा है कि तनु की शादी हुए साल-भर से ऊपर हो गया है। एक छोटा-सा बेटा भी हुआ है। उसे लेकर ही व्यस्त रहती है। उसकी छोटी-मोटी सेवाओं में उलझी तनु ने अतीत को पोंछकर

से उऋण तो नहीं ही हुए। तुम्हारे सपनों की तस्वीर को बदरंग करके हम खुद भी कोई नई तस्वीर न बना पाए।"

आखिरी वक्त बाऊ जी मुसकराए। बोधिसत्व की-सी मुसकराहट, खुश लोग खुश रहो। बस, इतनी-सी आकांक्षा है मेरी।"

इतनी-सी आकांक्षा। बाऊ जी, बीजी, मीना मौसी, सुरेश सभी की इतनी-सी ही आकांक्षाएं और उन आकांक्षाओं का साक्षी यह हवेली का आखिरी मकान, जिसने इन आकांक्षाओं को उगते, फूलते और फिर कुम्हलाते हुए देखा।

धूप छतों पर बिखर गई है। मीना मौसी हलके कदमों से छत पर आकर पीपल के नीचे मुंडेर पर बैठ गई हैं। तवी की फैली हुई रेती की ओर मुंह करके। विकी ने मीना मौसी को बीजी की जगह पर बैठी देखा, तो भीतर तरलता का फैलाव बाढ़-सा किनारे तोड़ने लगा।

मीना मौसी से ढेर सारे प्रश्न नहीं पूछने हैं, ढेर-से समाधान भी नहीं खोजने। हां, कुछ जरूरी काम निपटाने हैं विकी को, जाने से पहले।

बाऊ जी ने 'विल' लिखी है। विकी ने वे सारे कागजात देखे हैं। मीना मौसी के नाम कुछ रकम जमा है, मामूली-सी रकम। विल के मुताबिक मीना मौसी मकान के एक कमरे में रहेंगी। बाकी घर किराये पर उठा देंगी। किराये के पैसों को तीन हिस्सों में बांटा जाएगा। एक हिस्सा मीना मौसी के लिए दो बेटों के लिए।

सुरेश भैया का पत्र उसने दुबारा पढ़ा है। स्वार्थ की कोई गंध नहीं उसमें। मुक्त मन:स्थिति में लिखा गया पत्र। इतना बदलाव? क्या बाऊ जी ने कभी इस बदलाव की पूर्व कल्पना

की थी ?

"सीखेगा, जरूर सीखेगा। ठोकरें खाएगा तो अक्ल आएगी।"

सुरेश ने लिखा है, "उसे कुछ नहीं चाहिए। वह उस जगह पर है, जहाँ पैसा इकट्ठा करने का कोई महत्त्व नहीं। अभी है अभी नहीं।" उसकी इच्छा भी नहीं हैं। शादी करके घर बसाने का न उसे शऊर है और न ही अब वैसी कोई लालसा मन मे उगती है। बाऊ जी उसे आर्मी आफिसर बनाना चाहते थे। यह आफिसर नहीं; पर जवान तो बन गया। बाऊ जी बेटे के लिए मन में कोई मिसाल न रखें। विकी जैसा निर्णय लेना चाहे, ले, उसे खुशी होगी।

यह पत्र मीना मौसी को कुछ ही दिन पहले मिला है और निर्णय विकी ने ले लिया है। मीना मौसी ने इस बार भी विरोध नहीं किया। भीतर की उथल-पुथल के बावजूद वह ऊपर से शांत हैं। निलिप्त भाव से वह ढक्की उतरती बूढ़ी भक्तिन की फूलों की टोकरी थामे, भजन गुनगुनाती सुनती है। मीन मौसी यहाँ रहीं, तो वह भी भजन-पूजन में मन रमाना सीख लें शायद अभी तक वैसा कोई विश्वास वह अपने भीतर जगा नहीं पाई हैं; परंतु सब तरफ से कटने के बाद सहारे के लिए अध्यात्म ही एकमात्र संबल बच जाता है न ?

विकी मुंडेर पर झुककर नीचे गली में झांकता है, रेले-के रेले पुरुष, स्त्रियाँ। इन स्त्रियों में तनु भी होगी क्या ? नीली चुन्नी से झांकता मासूम गुलाबी चेहरा, बार-बार नजरें उठाक किसी को खोजती हुई बेताब चंचल तनु, पर कहाँ ? मीना मौसी ने कहा है कि तनु की शादी हुए साल-भर से ऊपर हो गया है एक छोटा-सा बेटा भी हुआ है। उसे लेकर ही व्यस्त रहती है उसकी छोटी-मोटी सेवाओं में उलझी तनु ने अतीत को पोंछक

दिया होगा। तभी इधर रहने के बावजूद विकी से मिलने न आई। या शायद उसे विकी की आखिरी हिदायत याद हो, 'फिर इधर कभी मत आना। कोई बुलाए तब भी नहीं।'

मीना मौसी के तानपुरे पर धूल की मोटी परत जम गई है। बाऊ जी ठीक थे, तो कभी-कभी सुनते थे। वे बिस्तर पर पड़े तो मीना मौसी का संगीत उनसे विदा हो गया। अब तानपुरा साफ कौन करेगा और किसके लिए करेगा?

मीना मौसी इस सूने घर में अकेली क्या करेगी? उसने कहा था, 'बहुत गई बेटे! अब कितना बाकी है? कट जाएगी वो भी।"

"अकेले?"

"हम सभी तो अकेले हैं विकी!"

विकी जानता है कि वह मीना मौसी के साथ बहस न कर पाएगा; पर वह यह भी जानता है कि यहां अकेली नहीं रहेगी। विकी उसे अकेले रहने नहीं देगा। मीना मौसी इस घर में तमाम घावों के खुरंड उधेलती बार-बार लहू-लुहान होती रहेगी और विकी दूर, महानगर में अलग-थलग जिन्दगी जीता हुआ भी उन घावों की पीड़ा महसूस करता रहेगा।

मकान वह बिकवा रहा है, किराये पर नहीं देगा। मीना मौसी चुन्नी का छोर दांतों तले दबाए फूटती रुलाई का दम घोट रही है, पर इनकार नहीं करती। वह तो उम्र-भर बनजारन बनकर जी है। अब इन ईंट-गारे की दीवारों से क्या मोह लगाना? फिर मरघट में दिए जलाकर वह किस की प्रतीक्षा करेगी? किस नई आशा-अपेक्षा में?

गुप्ता जी ने काफी मदद की है। बाऊ जी के खास दोस्तों

एक वे ही अंत तक साथ देते रहे। मकान का खरीदार तय
[illegible]ा, नीलामी, कुछ छुटपुट ऋणों के भुगतान वगैरह के लिए
ही दौड़-धूप कर रहे हैं।

मकान व कुछ सामान धर्मार्थ संस्था वाले ले रहे हैं। विकी
[illegible] आगन मीना मौसी के साथ खड़ा तटस्थ भाव से सामान
[illegible] नीलामी देख रहा है, बाऊ जी का नक्काशीदार पलग,
[illegible]जी के गरम कपड़ों का बड़ा ट्रंक, जिसे लेने के लिए उन्होंने दो
दिन भूख-हड़ताल की थी, विकी-सुरेश के बचपन का रगीन
[illegible]लना, जिसपर बीजी के झूलना झुलाते हाथों के निशान जैसे
हमेशा के लिए ठहर गए हैं।

'वर्षों जुड़े रहने के बाद निर्जीव वस्तुओं से भी लगाव
[illegible]ोड़ते जी कसकता है।

जरूरी सामान बंधवाकर वे विदा हो रहे हैं विकी और
मीना मौसी। ड्योढ़ी से बाहर आकर सीढ़ियां उतरते विकी
मुड़कर देखता है, उसका घर। बीजी की लिश्कती ड्योढ़ी, जिसे
घण्टों धो-पोछकर भी उनका जी न भरता था। खुले आगन का
वह हिस्सा, जहां मंजे पर लेटे बाऊ जी आकाश निहारते ढेर
सारे सपने बुना करते थे। छत वाला कमरा, जहां सुरेश अपनी
प्रेमिकाओं के साथ लुके-छिपे प्यार-मनुहार के गीत गाता था
और पीपल की छांव वाला पस्त छत का वह कोना, जहा विकी
बीजी की गोद में बैठा चमकती आखों से मां के बचपन के
संस्मरण सुना करता था।

अधखुली खिड़कियों-दरवाजों की संधों से फूटते तीखे-मीठे
बोल, स्मृतियों के नन्हे-नन्हे हाथ विकी को पीछे की ओर खींचते
हैं; पर विकी को आगे बढ़ना है। नई जिन्दगी जीने के लिए
विगत से कटना है। मीना मौसी हाथ पकड़कर उसे आगे बढ़ा
रही हैं। वह पीछे मुड़कर नहीं देखतीं, क्योंकि वह जानती हैं—

काटना, जुड़ना, जख्मी होना, सभी अनिवार्य हैं, जीने के लिए।

बावड़ा बाजार के बाएँ हाथ एक संकरी-सी डबकी टेढ़ी-मेढ़ी, बलखाती हुई नीचे तकी तक चली गई है। फिसल बेड़े की तरह ऊपर से नीचे जाती यह गली 'पीरखो' वाली सड़क पर एक बूढ़े पीपल के पास चौड़ी होकर चार नन्ही पगडंडियों में बंट गई है।

पीपल के छांह में लेटे गणेश जी के नंगे सिर पर 'धर्मार्थ-वालों' ने छत डालकर कलश-कंगूरों से उसे सजा दिया है। 'पीरखो' जाने वाले श्रद्धालु जन पीपल की परिक्रमा कर गणेश जी पर फूल-अक्षत चढ़ाते, डबकी के आखिरी मकान की सिसकती ईंटों को देखते हैं और ठंडी उसांस भरते हैं।

इस मकान के चारों ओर बट्टों की दीवार बनाकर इसे मंदिर के अहाते के साथ मिला दिया गया है।

यहां अब कोई नहीं रहता। लोग कहते हैं, खामोश रातों में यहां भूत-प्रेतों की सदाएं गूंजती हैं। जगह-जगह पलस्तर उतरी नंगी दीवारें और मलबे के ढेर मन में दहशत-सी भर देते हैं।

ड्योढ़ी की जगह दो खंभों के सहारे टिकी अधगिरी छत के नीचे, ऊंघती दोपहरी में कई कुत्ते टांगों में सिर घुसाए यहां आराम से सोए रहते हैं।

कहते हैं, यहां धर्मशाला बनेगी। बीजी-बाऊ जी की छोटी-बड़ी आकांक्षाओं, दुखों-तकलीफों और अकेलेपन की यातनाओं के इस अंतिम साक्ष्य इस मलबे की ढेरी पर धर्मशाला से बेहतर और क्या चीज बन सकती है ? इसके कुछ मुसाफिर यात्रा कर चले गए, कुछ अलग-अलग राहों पर अपनी मंजिलें तलाशने

निकल गए।

पीढ़ियों से पाले गये भ्रमों व स्वप्नों की परिणति को भोग-कर वे भविष्य के प्रति अनिश्चित हैं, पर वे वर्तमान को जी रहे हैं। अजनबी भीड़ों में, अपनी जमीन से कटकर भी अपने वजूद को तलाश रहे हैं और यही तलाश सच है, शेष सब झूठ। क्योंकि यही तलाश जिंदगी है।

□□

मुद्रक : आर्ई० बी० सी० प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

अन्य प्रकाशन

सुनील गावस्कर : मेरे प्रिय खिलाड़ी	१०/-
इंदिरा गांधी : जीवनी और शहादत	१०/-

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

देवदास	१०/-
मंझली दीदी	१०/-
काशीनाथ	१०/-
दत्ता	१०/-
गृहदाह	१०/-

आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षामः	१०/-
गोली	१०/-
सोना और खून-१	१०/-
सोना और खून-२	१०/-
सोना और खून-३	१०/-
सोना और खून-४	१०/-
वैशाली की नगरवधू	१०/-
सोमनाथ	१०/-

शिवानी

सुरंगमा	१०/-
विवर्त्त	१०/-

अमृता प्रीतम

कोरे कागज — १०/-

राजेन्द्रसिंह बेदी

एक चादर मैली-सी — १०/-

जेम्स ऐलन

चिन्ता छोड़ो : आगे बढ़ो — १०/-

जैसा चाहो वैसा बनो — १०/-

सत्यकाम विद्यालंकार

प्रेरक प्रसंग — १०/-

पंचतंत्र — १०/-

सं० प्रकाश पंडित

शे'र-ओ-शायरी — १०/-

उर्दू शायरी के नये अंदाज — १०/-

प्रो० पी० शर्मा

कलर फोटोग्राफी — १०/-

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

सामान्य रोगों की सरल चिकित्सा — १०/-

मन्मथनाथ गुप्त

भारत के क्रान्तिकारी — १०/-

डॉ० सत्यपाल

१०/-

अरुणा शेठ

स्वादिष्ट भोजन कला १०/-

जसलीन दुग्गल

भारतीय व्यंजन १०/-

मानस हंस

अनमोल मोती १०/-

स्वेट मार्डेन

प्रभावशाली व्यक्तित्व १०/-
निराशा से बचिए १०/-

डॉ० शुकदेवप्रसाद सिंह

ठीक खाओ स्वस्थ रहो १०/-

प्रकाश दीक्षित

हस्त रेखाएं १०/-

गोपीनारायण मिश्र

भारतीय ज्योतिष १०/-

रामकुमार भ्रमर कृत

महाभारत पर आधारित उपन्यास

अब तक प्रकाशित खण्ड

	पेपरबैक	सजिल्द
आरंभ-१	८.००	३५.०
अंकुर-२	"	"
आवाहन-३	"	"
अधिकार-४	"	"
अग्रज-५	"	"
आहुति-६	"	"
असाध्य-७	"	"
अमीप-८	"	"
अनुपन-९	"	"
१८ दिन-१०	"	"
अन्त-११		"
अनन्त-१२	"	"